बर्थ-कंट्रोल
के घातक परिणाम

प्रोफ़ेसर उमर हयात ख़ाँ ग़ौरी
अनुवाद
मुहम्मद आबिद हामिदी

विषय सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह कृपाशील, दयावान के नाम से।"

भूमिका

बर्थ-कन्ट्रोल एक यहूदी आन्दोलन है जिसको सर्वप्रथम ईसाइयों ने अपने देशों में लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया। धीरे-धीरे इसे विश्वव्यापी बना दिया गया। इसके भयंकर दुष्परिणामों ने सामाजिक मूल्यों को तहस-नहस कर दिया। इस प्रकार आज इस आन्दोलन तथा इसके व्यावहारिक परिणामों को जाँचने और समझने की अधिक सम्भावनाएँ उत्पन्न हो गई हैं।

इसकी जाँच-पड़ताल इसलिए भी आवश्यक है कि अब इस आन्दोलन को विश्व-स्तर पर लोकप्रिय और स्वीकार्य बनाने के प्रयत्न हो रहे हैं। पश्चिमी देश इसके विस्तार में अधिक रुचि दिखा रहे हैं। अतः यह आवश्यक है कि देखा जाए कि इस आन्दोलन ने पश्चिम को क्या प्रदान किया है तथा किन चीज़ों से उसे वंचित कर दिया है ताकि इस जाँच पड़ताल के प्रकाश में इस आन्दोलन के सम्बन्ध में निर्णय किया जा सके।

यह पुस्तक इसी जाँच-पड़ताल का प्रतिफल है जिसे "बर्थ-कंट्रोल के घातक परिणाम" के नाम से प्रस्तुत किया जा रहा है। अन्त में भारत वर्ष की आबादी एवं खाद्यान्न-स्थिति का विश्लेषण भी पेश कर दिया गया है ताकि देशवासियों को इस आन्दोलन के विषय में अपना मत निर्धारित करने में सुविधा हो।[1]

ईश्वर से प्रार्थना है कि यह विश्लेषण किसी सही एवं लाभप्रद परिणाम तक पहुँचने में मार्ग प्रशस्त कर सके।

(भोपाल, 12 अक्तूबर, सन् 1995 ई॰) —उमर हयात ख़ाँ ग़ौरी

1. प्रस्तुत पुस्तक 1995 ई॰ में उर्दू भाषा में लिखी गई थी। इसलिए इसमें जो आँकड़े दिए गए हैं वे उसी समय के हैं। इस किताब का अध्ययन करते समय पाठकों के सामने यह बात रहनी चाहिए।

(1)

बर्थ-कंट्रोल की दार्शनिक पृष्ठभूमि

बर्थ-कंट्रोल (Birth Control), परिवार नियोजन (Family Planning) या नियोजित पितृत्त्व (Planned Parenthood) एक ही क्रिया के विभिन्न नाम हैं जिसका मूल उद्देश्य संसार में मनुष्य की आबादी को कम-से-कम करना है। इसके लिए बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाई जाती रही हैं। ये योजनाएँ राष्ट्रीय स्तर पर भी बन रही हैं और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी। आश्चर्यजनक बात यह है कि बीसवीं शताब्दी का मानव, जो शैक्षिक, वैचारिक और ज्ञान-विज्ञान तथा तकनीकी तौर से प्रगतिशील होने तथा मानव इतिहास का अतिसभ्य मानव होने का दावेदार है, उसके संसार में जंगली जानवरों, शेर और चीते जैसे दरिन्दों, पानी के मगरमच्छों, साँप और बिच्छू जैसे जीव-जन्तुओं की नस्ल-वृद्धि तथा उनकी नस्लों की सुरक्षा के लिए बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाई जा रही हैं और उनपर अरबों-खरबों रुपये ख़र्च किए जा रहे हैं। मगर उन्हीं सभ्य इनसानों में मानव-जाति के प्रति उदारहीनता तथा भाव-शून्यता इस हद तक बढ़ गई है कि उनके समाज में अगर किसी के लिए जगह नहीं है तो उनकी अपनी नस्लों के लिए नहीं है जिनकी वृद्धि रोकने के लिए अरबों-खरबों रुपयों की योजनाएँ बनाई जा रही हैं। क्या मानवता की यह प्रतिकूल प्रगति चिन्ता योग्य बात नहीं है? इसे मानसिक उत्थान कहा जाए या पतन?

स्रष्टा की सृष्टि

यह विश्व जिसमें हम रह रहे हैं संयोगवश और स्वयं ही अस्तित्त्व में नहीं आ गया है, बल्कि इसका निर्माण करनेवाला एक तत्त्वदृष्टा प्रबुद्ध हस्ती है जो प्रतिक्षण उसकी निगरानी कर रही है। संसार की प्रत्येक वस्तु पर उसकी निगाहें रहती हैं तथा उसकी जानकारी के बिना और उसकी तत्त्वदृष्टि से निरपेक्ष होकर कोई भी वस्तु इस संसार में

अस्तित्त्व में नहीं आती। वह भली-भाँति जानता है कि उसने अपने जगत को किस प्रकृति पर निर्मित किया है और उसकी सृजन-क्रिया में क्या उद्देश्य निहित हैं। उसे जगत के उस भाग में जिसे पृथ्वी कहते हैं, मानव-जाति की उत्पत्ति करनी थी। इसलिए उसने यहाँ ऐसी स्थिति और ऐसा वातावरण बनाया, जिसकी जगत् के प्रत्येक जीवधारी को आवश्यकता थी। वह भली-भाँति जानता है कि इस पृथ्वी के उदर में उसने किन-किन ख़ज़ानों को किस-किस मात्रा में छिपा दिया है और धरती में कितनी उर्वरा-शक्ति उत्पन्न की है। उसने मानव-जाति में बुद्धि एवं जिज्ञासा की क्षमताएँ उत्पन्न की हैं जिनके द्वारा वह संसार में असंख्य ज्ञान एवं कलाओं तथा तकनीक के क्षेत्र में उन्नति कर रहा है। वह यह भी भली-भाँति जानता है कि इतिहास के किस कालखण्ड में और संसार के किस भूभाग में किस प्रकार की योग्यताएँ और कितने लोग आवश्यक होंगे जो उसकी इस दुनिया को अच्छी तरह चला सकें[1]।

1. अभी कुछ ही दिनों पहले अमरीका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ॰ हेरिसन ने अपने एक भाषण में कहा था कि दुनिया में प्राकृतिक नियम इतने प्रबल हैं और निरन्तर चले आ रहे हैं कि शताब्दियों में भी उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यह इस बात का प्रमाण जुटाता है कि यह जगत स्वयं ही अस्तित्त्व में नहीं आ गया है। यदि स्वयं ही अस्तित्त्व में आया होता तो उन नियमों में आए दिन परिवर्तन होते रहते और वैज्ञानिक विकास सम्भव न होता। प्राकृतिक नियमों का यह दौर इस बात का प्रमाण है कि इस जगत् को निश्चित रूप से किसी महानतम सत्ता ने पैदा किया है और वह दृढ़ता के साथ इसको अपनी पकड़ में लिए हुए है।

(बी॰ बी॰ सी॰ लन्दन 27-8-95)

बर्थ-कंट्रोल की आधारशिला

पृष्ठभूमि

चौदहवीं और पन्द्रहवीं, दोनों शताब्दियाँ यूरोप के पुनर्जागरण की शताब्दियाँ रही हैं। उस युग में यूरोप में धार्मिक संकीर्णताओं से स्वतन्त्र विचारकों और शोधकर्त्ताओं की बहुत बड़ी संख्या पैदा हुई, जिसके वैचारिक एवं गवेषणात्मक परिणामों के फलस्वरूप यूरोप में नए-नए दर्शन एवं दृष्टिकोण पैदा होने लगे और विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में भी नए-नए आविष्कार सामने आए। नए विचारों और दृष्टिकोणों के परिणामस्वरूप कलीसा और स्वतन्त्र विचारकों के मध्य संघर्ष आरम्भ हो गया। कलीसा ने कठोर आचरण अपनाया, जिसके फलस्वरूप उन विचारकों में धर्म ही से नहीं अपितु ईश्वर से भी विमुखता व उपेक्षा का भाव उत्पन्न हो गया तथा अब उन्होंने जीवन के मामलों से ईश्वर एवं धर्म को निष्कासित करके जीवन की समस्याओं का समाधान करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। इस प्रकार उन विचारों के फलस्वरूप ईश-विहीन सभ्यता उत्पन्न होने लगी तो दूसरी ओर विज्ञान एवं तकनीकी उन्नति के परिणामस्वरूप यूरोप में बड़े-बड़े कल-कारख़ाने बनने लगे, जिनमें काम करने के लिए मज़दूरों की आवश्यकता पड़ने लगी। लोग देहातों को छोड़कर शहरों की ओर भागने लगे तथा कारख़ानों में मर्दों के साथ औरतों को भी नौकर रखा जाने लगा। इसलिए कि जीवन-स्तर की उन्नति के साथ ख़र्चों में भी वृद्धि होने लगी, यहाँ तक कि माँ-बाप के लिए सन्तान, बच्चों के लिए माँ-बाप और पति के लिए पत्नी असहनीय आर्थिक भार बन गए। दूसरी ओर मर्दों और औरतों के एक साथ कार्य करने के कारण परस्पर सम्बन्ध बढ़ने लगे। भौतिकता जीवन का उद्देश्य बन गई। इस सभ्यता ने वासना-लोलुप संस्कृति को जन्म दिया और इसके फलस्वरूप वासनापूर्ति हेतु अवैध सम्बन्ध बढ़ने लगे। औरतों और पुरुषों के स्वतन्त्र मेल-जोल से यह परिणाम निकलना स्वाभाविक ही था।

ईसाई समाज, जिसकी नींव उच्च नैतिक मूल्यों पर रखी गई थी और जिसमें पवित्रता का मानदंड संयम एवं एकाकी जीवन को माना गया था, उसमें नैतिक पथभ्रष्टता, धन का लोभ, जीवन का भौतिकवादी दृष्टिकोण एवं नैतिक उच्छृंखलता के परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाले व्यभिचार और अवैध सन्तानोत्पत्ति की बीमारियों ने धार्मिक लोगों को दुःख-ग्रस्त कर दिया था और वे चिन्तित थे कि किस प्रकार उसका निदान किया जाए तथा स्थिति-सुधार के उपाय अपनाए जाएँ।

माल्थस (Malthus)

माल्थस एक ईसाई पादरी था जो कैथोलिक चर्च से सम्बन्धित था। उस समय तक यद्यपि इंगलैंड में प्रोटेस्टेन्ट चर्च की स्थापना हो चुकी थी जिसका प्रमुख ब्रिटेन का राजा होता था। इसलिए देश और समाज की इस बिगड़ती हुई स्थिति पर वह तो कोई आलोचना कर ही नहीं सकता था। क्योंकि इस उद्देश्य के तहत उसे राजा की ग़लत नीतियों और सरकार के निरर्थक-नियमों की आलोचना करनी पड़ती। मगर चूँकि कैथोलिक चर्च वैटेकन के पोप के नेतृत्व में काम करता है, इसलिए माल्थस यह साहस करने लगा। उसने शासन की अनुचित नीतियों तथा निरर्थक नियमों की कठोर आलोचनाएँ आरम्भ कर दीं। इस उद्देश्य के लिए उसने अनेक छोटे-छोटे पत्रक (पैम्फ़्लेट) प्रकाशित किए और उनके द्वारा जन-साधारण को भी चरित्र व नैतिकता के गर्त में जाने से रोकने तथा शासन को भी उसकी ग़लत नीतियों एवं ढीले-ढाले नियमों की ओर ध्यानाकर्षित करने का प्रयत्न किया ताकि स्थिति-सुधार का कोई उपाय निकल सके।

इस बात का उल्लेख हो चुका है कि यूरोप में बड़े-बड़े कल-कारख़ानों की स्थापना के बाद देहातों से मर्द और औरतें शहर की ओर स्थानान्तरित होने लगे थे ताकि उन्हें यहाँ स्थायी रोज़गार मिल सके। कल-कारख़ानों में स्थायी काम मिलने और एक परिवार के कई सदस्यों के नौकरी में लग जाने के फलस्वरूप इंगलैंड में सम्पन्नता तो आ गई मगर अब मज़दूर कृषि के मौसम में अपने गाँव जाकर कृषि कार्य करने के लिए तैयार नहीं थे। दूसरी ओर फ़ैक्ट्रीवाले भी अपने कारख़ाने बन्द करके इतनी लम्बी छुट्टी नहीं देना चाहते थे। फिर खेती-बाड़ी जैसे कठिन और

श्रमसाध्य काम का रुझान भी कम से कम होने लगा। जब खेतों पर काम करनेवाले तथा पूँजी लगानेवाले व्यक्ति ही कम से कम होते चले गए तो स्पष्ट है कि इसके फलस्वरूप खाद्यान्न की पैदावार में कमी का रुझान स्वाभाविक था। देश की इस चिन्ताजनक स्थिति पर माल्थस ने विचार किया तथा उसके भयानक-परिणाम से अवगत कराने के लिए एक सिद्धान्त प्रस्तुत किया जिसे "माल्थस का जनसंख्या-सिद्धान्त" कहा जाता है। स्पष्ट है कि इस सिद्धान्त को प्रस्तुत करने में उसकी दृष्टि जन-साधारण से अधिक सरकार के ग़लत कार्यों पर थी, जिसके फलस्वरूप देहात उजड़ रहे थे तथा शहरों में नैतिक-पतन एवं चरित्रहीनता के दृश्य दिखाई देने लगे थे।

माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त

माल्थस ने सन् 1798 ई॰ में एक पुस्तिका "जनसंख्या एवं समाज की आगामी प्रगति पर उसके प्रभाव" (An Essay on the Principle of Population as it Affects the Future Improvement of Society) के शीर्षक से प्रकाशित किया।

इस पुस्तिका में उसने दावा किया कि जनसंख्या की वृद्धि की गति सदैव खाद्यान्न वस्तुओं की उत्पादन-वृद्धि से अधिक होती है। उसका विचार है कि जनसंख्या 2, 4, 6, 8, 10 की गति से बढ़ती है जबकि खाद्यान्न का उत्पादन 1, 2, 3, 4, 5, 6 की गति से बढ़ा करता है। और यदि जनसंख्या को इसी प्रकार बढ़ने दिया जाए तो वह हर पच्चीस वर्ष बाद दो गुनी हो जाती है। परिणाम यह होता है कि वर्तमान आबादी के लिए देश में उत्पादित खाद्यान्न काफ़ी नहीं होता। उसके अनुसार किसी देश की मानक जनसंख्या उतनी ही होती है, जितनी जनसंख्या के लिए उस देश में उत्पादित खाद्यान्न काफ़ी हो। माल्थस के अनुसार यदि इस बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने के प्रयत्न नहीं हुए तो फिर प्रकृति स्वयं उसको नियन्त्रित करती है और उस उद्देश्य की पूर्ती के लिए प्राकृतिक आपदाओं का अवतरण होने लगता है। अकाल, बाढ़, महामारियों, भूकम्प एवं युद्धों के द्वारा अनगिनत लोगों को समाप्त कर दिया जाता है और जनसंख्या अपनी सीमा में सिकुड़कर रह जाती है। माल्थस का मत है कि इन धरती और आकाश से उत्पन्न आपदाओं से

बचने का एक ही उपाय है और वह यह कि हम स्वयं अपने तौर पर जनसंख्या को नियन्त्रित करने की चिन्ता करें।

माल्थस के कथनानुसार जनसंख्या-वृद्धि रोकने के लिए विभिन्न तरीक़े अपनाए जा सकते हैं, उदाहरणार्थ विवाहों में विलम्ब करना, अवैवाहिक जीवन व्यतीत करना, सम्भोग-क्रिया यथासम्भव अन्तराल से करना तथा उच्च नैतिक नियमों का अनुपालन करना।

माल्थस के दृष्टिकोण की आलोचना

माल्थस के इस सिद्धान्त की अनेक दृष्टिकोणों से आलोचनाएँ की गई हैं तथा इसे केवल काल्पनिक मत माना गया है–

1. संसार के किसी देश की जनसंख्या और वहाँ की खाद्यान्न-उपज में वह अनुपात नहीं पाया गया जो माल्थस ने बयान किया है न किसी देश की जनसंख्या पच्चीस वर्ष में दुगनी हुई है। अतः माल्थस के सिद्धान्त का आधार केवल काल्पनिक है। इसका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं। (बाद में स्वयं माल्थस ने भी अपनी ग़लती स्वीकार कर ली थी।)
2. माल्थस के अनुसार भूमि की उर्वरा शक्ति धीरे-धीरे कम होती रहती है। उसके पास यह ज्ञात करने का कोई साधन नहीं था कि भविष्य में विज्ञान एवं तकनीकी उन्नति के नतीजे में बीज, सिंचाई, खाद तथा कृषि की आधुनिक तकनीक के क्या-क्या अनुसंधान हो सकते हैं और उनसे भूमि की उर्वरा-शक्ति में कितनी वृद्धि हो सकती है। अतः माल्थस के सिद्धान्त का कोई ठोस आधार नहीं है।
3. माल्थस इस बात को भूल गया कि मनुष्य एक मुँह के साथ दो कमानेवाले हाथ भी लेकर पैदा होता है। इसलिए वह जितना खाता है उससे अधिक कमाने की क्षमता भी रखता है, जिससे देश की राष्ट्रीय सम्पदा की वृद्धि में सहायता मिलती है और काम के नए-नए रास्तों की खोज की जाती है।
4. माल्थस ने अकारण खाद्यान्न वस्तुओं की उपज पर असाधारण बल दिया है। जबकि इस विषय में उचित वितरण को बुनियादी महत्त्व प्राप्त है, जिसकी ओर माल्थस ने कोई ध्यान नहीं दिया। यदि वितरण की व्यवस्था ग़लत होगी तो अधिक लोगों के लिए अनाज उपलब्ध होने पर भी कुछ लोग भुखमरी के शिकार हो सकते हैं।

इन कारणों से माल्थस का सिद्धान्त अवास्तविक और मात्र काल्पनिक ठहरता है। उसे हर काल में तथा हर देश पर लागू भी नहीं किया जा सकता और भविष्य ने तो उसे ग़लत ही साबित कर दिया है।

इच्छाओं की दास संस्कृति की कठिनाई

माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त पर इतनी कठोर आलोचनाएँ और उसके खोखलेपन को साबित कर देने के पश्चात वह मात्र कल्पनाओं के पिटारे का नाम रह जाता है, जिसकी कोई ठोस आधारशिला मौजूद नहीं है। इसलिए वह विचारणीय ही नहीं था। परन्तु चूँकि माल्थस एक पादरी था और वह भी परम्परावादी कैथोलिक पादरी, अतः उसके इस सिद्धान्त में स्वार्थ लोलुपता के लिए एक महत्त्वपूर्ण आधार हाथ लग रहा था। इसलिए उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी और वह आधार उसका यह मत था कि बच्चे की पैदाइश को रोकना कोई नैतिक एवं धार्मिक अपराध नहीं है। माल्थस चूँकि धार्मिक व्यक्ति था, अतः उसके इस मत को धर्मादेश-रूप में प्रस्तुत करके धार्मिक आस्था रखनेवाले लोगों से मनवाया जा सकता था। इसलिए इस गरोह ने माल्थस के सिद्धान्त में से केवल उसके इस भाग को दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया तथा शेष भाग को उपेक्षित कर दिया। मगर स्वार्थ लोलुप लोगों की परेशानी यह थी कि माल्थस ने सन्तानोत्पत्ति रोकने के जो प्रस्ताव प्रस्तुत किए थे, वे विशुद्ध धार्मिक प्रकार के भी थे और उनसे वासनात्मक इच्छाओं के खुले दुरुपयोग का अवसर भी नहीं मिल सकता था।

मनुष्य को संसार में पथभ्रष्टता, अनैतिकता और पापाचार से केवल दो चीज़ें ही सुरक्षित रखती हैं— एक ईश-भय और दूसरा समाज का भय। ईश्वर का भय इस प्रकार कि यदि आदमी को यह विश्वास है कि इस जगत् का और स्वयं मानव समुदाय का स्रष्टा एक ईश्वर है, जो प्रतिक्षण लोगों की निगरानी भी कर रहा है, उसका कर्मपत्र भी तैयार करा रहा है तथा वही क़ियामत के दिन न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठकर कर्मों का हिसाब-किताब लेगा, सज्जन लोगों को स्वर्ग में स्थान दिया जाएगा और पापियों को नरक में दण्डित किया जाएगा तो यह व्यक्ति क़दम-क़दम पर इस बात पर दृष्टि रखेगा कि उससे कोई ऐसा कार्य न

हो जिससे ईश्वर अप्रसन्न होता हो तथा जिसके परिणामस्वरूप नरक में जाना पड़े। ऐसा व्यक्ति पथभ्रष्टता एवं पाप से इस प्रकार भागेगा, जिस प्रकार लोग आग से भागते हैं। आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता ने ईश-भय तो दिलों से निकाल दिया है। इसलिए कि उसने मानव के हृदय में ईश्वर के स्थान पर अर्थ-लोलुपता और हवस को बिठा दिया और इस प्रकार उसने ईश्वर, धर्म एवं नैतिकता से मुक्ति प्राप्त कर ली, परन्तु सामाजिक भय अभी शेष था। माल्थस ने सन्तानोत्पत्ति रोकने के लिए जिस कार्य-प्रणाली को प्रस्तावित किया था, वह उन स्वार्थी लोगों को स्वीकार नहीं था। इसलिए कि इससे न केवल सन्तान-वृद्धि पर नियन्त्रण हो रहा था बल्कि उनकी काम-लोलुपता की माँग पर भी लगाम लगानी पड़ रही थी, जिसके लिए यह गरोह तैयार नहीं था। फिर इस गरोह को मुश्किल से एक धर्मादेश प्राप्त हुआ था, अतः वह इस अवसर को गँवाना नहीं चाहते थे। परन्तु उनकी यह इच्छा थी कि किसी प्रकार कोई ऐसी स्थिति पैदा हो जाए जिससे सन्तानोत्तपत्ति से छुटकारा भी मिल जाए और उन्हें मनमानी भोग-विलास की स्वतन्त्रता भी प्राप्त रहे। इस गरोह की इस इच्छा-पूर्ति के लिए माल्थस ही के नाम का प्रयोग करता हुआ एक नया गरोह उभरा जिसे नव-माल्थसी (Neo-Malthusian) गरोह कहा जाता है।

नव माल्थसी आन्दोलन (Neo-Malthusian Movement)

नव माल्थसी आन्दोलन उन्नीसवीं शताब्दी की अन्तिम चौथाई में आरम्भ हुआ। इस गरोह की सूत्रधार श्रीमती मैरी स्टोप (Mrs. Marie Stope) और श्रीमती मारग्रेट संगर (Mrs. Margaret Sanger) को कहा जाता है। श्रीमती मैरी का सम्बन्ध ब्रिटेन से था जबकि श्रीमती संगर अमेरिकी थीं। इस गरोह के लोगों ने उन सभी आलोचनाओं को ध्यान देने योग्य न समझते हुए माल्थस के दृष्टिकोण को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया, परन्तु इस दृष्टिकोण पर इस गरोह की दो अपत्तियाँ थीं :

1. माल्थस ने जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिए जिन नैतिक बन्धनों और सीमाओं को प्रस्तावित किया है, वे अव्यावहारिक हैं।
2. माल्थस ने काम-वासना एवं सन्तानोत्पत्ति की इच्छा को एक ही

समझ लिया है। जबकि ये दोनों दो अलग-अलग इच्छाएँ हैं जिनमें अन्तर करना आवश्यक था। इस गरोह की दृष्टि में कामेच्छा एक प्राकृतिक इच्छा है जो प्रत्येक मुनष्य के अन्दर मौजूद होती है और जिसका महत्त्व उसके जीवन में वही है जो उसके खाने-पीने की इच्छा का है। चूँकि इस इच्छा की पूर्ति स्वस्थ-जीवन के लिए आवश्यक है इसलिए औलाद के भय से आदमी को उस इच्छा की पूर्ति से रोकना अप्राकृतिक है। ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि एक ऐसी कार्यप्रणाली अपनाई जाए, जिससे उसकी पूर्ति भी हो सके और बच्चे भी पैदा न हों।

इस गरोह के प्रस्ताव

1. इस गरोह ने प्रस्ताव रखा कि जब सन्तानोत्पत्ति रोकना कोई धार्मिक पाप ही नहीं है तो इसके लिए कोई भी उपाय अपनाया जा सकता है। अतएव इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कृत्रिम उपाय अपनाने में कोई हानि नहीं है बल्कि ऐसा उपाय अपनाना अति आवश्यक है।
2. इस गरोह ने यह भी कहा कि नैतिकता एक सापेक्षिक वस्तु है। उसके मूल्य स्थिर एवं स्थायी नहीं होते बल्कि सामाजिक तथा आर्थिक स्थितियों में परिवर्तन के साथ-साथ बदलते रहते हैं। इनका कहना था कि यदि कोई कार्य समाज के लिए हितकर हो तो उसे नैतिक मूल्यों में सम्मिलित करना चाहिए। बर्थ-कंट्रोल में कोई अनैतिकता नहीं है। इसलिए कि जनसंख्या कम करना समाज की सम्पन्नता तथा कल्याण के लिए आवश्यक है। इसलिए उद्देश्य-प्राप्ति के लिए कृत्रिम उपाय अपनाने चाहिएँ।

नव माल्थसियों ने माल्थसी दर्शन की इन त्रुटियों को निकालकर और अपनी नई प्रस्तावनाएँ प्रस्तुत करके वास्तव में माल्थस के सिद्धान्त को सिर के बल खड़ा कर दिया था। परन्तु चूँकि भौतिकवादी समाज, स्वेच्छाचारी संस्कृति और पूँजीवादी व्यवस्था को उसी की ज़रूरत थी, अतः इस सिद्धान्त के स्वरूप के इस परिवर्तन का उत्साहपूर्ण स्वागत किया गया।

व्यापारिक मानसिकता की चतुराई

उस ज़माने में यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति अपने चरम पर थी और पूँजीपति लोग धन कमाने तथा जन-साधारण की जेबें ख़ाली करने में प्रतिस्पर्धा कर रहे थे। अतः उन लोगों ने इस परिवर्तन को हाथों-हाथ लिया। बड़े पैमाने पर इस दृष्टिकोण और इस नए स्पष्टीकरण का प्रचार किया गया। वैज्ञानिकों को सन्तानोत्पत्ति रोकने की नई-नई औषधियों तथा यन्त्रों के आविष्कार पर लगा दिया गया और बड़े पैमाने पर उनका उत्पादन होने लगा। दूसरी ओर इस वर्ग ने औरतों के प्रसाधन एवं शृंगार के सामानों के आविष्कार पर पूरा ध्यान केन्द्रित करना आरम्भ कर दिया, ताकि जन-साधारण की कमाई का बड़ा भाग उनकी तिजोरियों में वापस आ जाए। फिर तीसरी ओर इस गरोह ने औरतों के लिए नित नए परिधानों का आविष्कार करके उन्हें नग्न से अति नग्न करने की योजनाएँ बना डालीं। इस प्रकार व्यापारी वर्ग ने दृष्टिकोण के इस परिवर्तन को मुफ़्त में आए सुलभ उपहार का प्रतिरूप समझा और इस परिवर्तन को आम लोगों की जेबें ख़ाली करने के लिए बड़े पैमाने पर प्रयोग कर डाला। इस गरोह ने विज्ञापन एवं प्रचार के द्वारा इन चीज़ों को जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं में सम्मिलित करा लिया और इस प्रकार जन-साधारण की सम्पन्नता पर डाके डालने आरम्भ कर दिए।

नए दर्शन

उसी काल में दो प्रसिद्ध यहूदी दार्शनिक पैदा हुए, जिनके दर्शनों ने रही-सही कमी भी पूरी कर दी। वे हैं कार्ल मार्क्स और फ्रायड।

कार्ल मार्क्स (1817-1883)

कार्ल मार्क्स को समाजवाद का जनक कहा जाता है और प्रसिद्ध किताब 'कैपिटल' को समाजवाद की बाइबल। उसके अनुसार नैतिकता एक ज़ंग है जो सामाजिक शरीर को लग गया है तथा उस ज़ंग को खुरचकर फेंकना वह समाजवाद का कर्तव्य बताता है। उसका विचार है कि नैतिक मूल्य भौतिक स्थितियों के परिवर्तनों के साथ-साथ परिवर्तित

होती रहती हैं। मार्क्स का विचार है कि 'धर्म' पूँजीपतियों का आविष्कार और ईश्वर पूँजीपतियों का पैदा किया हुआ धोखा है। ईश-भय के अन्तर्गत धर्म का पालन करवाकर पूँजीपति मज़दूरों को अपने द्वारा किए जानेवाले शोषण पर सहमत एवं सन्तुष्ट रखता है। इस प्रकार मार्क्स ने ईश्वर, धर्म एवं नैतिक मूल्यों की परिकल्पनाओं को मौत के घाट उतार दिया और जब रूस में समाजवादी सत्ता की स्थापना हुई तो वहाँ नैतिक मूल्यों से विहीन समाज बनाने के लिए एक बड़ी योजना बनाई गई। उसका प्रथम नेता लेनिन था। वह वासनात्मक इच्छा को एक ग्लास पानी की प्यास की भाँति समझता था। जिस प्रकार प्यास लगने पर कहीं से भी प्राप्त किया हुआ पानी पी लिया जाता है, उसी प्रकार वह क़ामेच्छा को कभी भी, कहीं भी और किसी से भी पूरी कर लेने का दृष्टिकोण रखता था। उसने रूस में किस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न की थी, उसके वर्णन का मौक़ा तो यहाँ नहीं है परन्तु इससे अनुमान लगा लें कि एक बार 'इलस्ट्रेटेड वीकली आफ़ इंडिया' (Illustrated Weekly of India) ने रूसी गणतंत्रों के डाक टिकटों के फ़ोटो प्रकाशित किए थे जो सबके सब औरतों की बिल्कुल नग्न चित्रों पर आधारित थे। उसने पारिवारिक व्यवस्था का उन्मूलन कर दिया तथा औरतों और मर्दों को स्वच्छन्द रूप से काम-वासना पूर्ति की खुली छूट दे दी थी।

फ्रायड (1856-1939)

दूसरा यहूदी दार्शनिक सेगमण्ड फ्रायड[1] भी उसी काल में पैदा हुआ। फ्रायड ने अपने सम्पूर्ण दर्शन को वासना के चारों ओर घुमाकर मनुष्य के सारे क्रिया-कलापों को उसके कामुकता भाव की देन ठहराया है।

---

1. मार्क्स और फ्रायड के सिद्धान्तों को समझने और उनकी ज़हरनाकी मालूम करने के लिए उस परिप्रेक्ष्य को समझना भी ज़रूरी है, जिसके अन्तर्गत ये लोग काम कर रहे थे।

यहूदियों की यह आस्था है कि दुनिया की अगुवाई और हुक्मरानी केवल उनका हक़ है। वे दुनिया के हाकिम और शासक हैं और सारी दुनिया उनकी ग़ुलाम। इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए उन्होंने एक ख़ुफ़िया कांफ्रेंस की, जिसमें एक योजना बनाई गई। इस योजना को यहूदी प्रोटोकॉल कहा जाता है। (The Porotocals of the Learned elders of Zion) इस प्रोटोकॉल में जो पॉलीसी बनाई गई थी वह इस प्रकार है—

"अगर हम हर स्थान पर नैतिक पतन के प्रयास करते रहें तो हमारा वर्चस्व

उसका कहना है कि मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन वासना से उभरता है और वासना प्रौढ़ता के समय प्रकट नहीं होती बल्कि वासना तो जन्म ही के समय मौजूद होती है और मनुष्य जब जन्म लेता है तो वह बाल्यावस्था में भी विशुद्ध कामुकता की प्रतिमूर्ति होता है। बच्चे के सारे क्रिया-कलाप वासना के द्योतक होते हैं। उसने इस बात पर भी आग्रह किया है कि धर्म और नैतिकता भी निश्चित रूप से वासना-शक्ति से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उसने धर्म, नैतिकता और परम्पराओं को वासना की गन्दगी में लिथेड़कर इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि उनसे भी वासना की गन्दगियाँ टपकने लगें तथा वासना में भी पवित्रता उत्पन्न हो जाए।

फ्रायड का कथन है कि मानव-प्रकृति में सबसे शक्तिशाली वस्तु उसकी वासनात्मक इच्छा है, जो अपने प्रकटिकरण के लिए किसी सीमा

आसान हो जाएगा।"

इसमें फ्रायड के बारे मे कहा गया है कि वह हमारे उद्देश्यों की पूर्ति में सरगर्म है।

"फ्रायड हम में से है और वह वासनात्मक सम्बन्धों को खुले तौर पर प्रस्तुत करता रहेगा ताकि युवा पीढ़ी की नज़र में कोई चीज़ पवित्र न रहे और अपनी वासनात्मक भूख मिटाने लग जाए। यही तरीक़ा नैतिकता के पतन का तरीक़ा है।" ('इनसानी ज़िन्दगी में जमूद व इरतिक़ा' मुहम्मद क़ुतुब, पेज 55 के हवाले से)

इन लोगों के सामने एक ही समय में दो उद्देश्य थे। कामवासना पवित्र हो जाए ताकि छिपी हुई इच्छाएँ स्वतन्त्र हो जाएँ और नवजवान बग़ैर अन्तःकरण की मलामत के जानवरों की तरह वासनात्मक इच्छाओं की पूर्ति करते रहें और साथ ही धर्म-नैतिकता और परम्परा की मूल वासना को बताकर— उन लोगों की नज़र में अपवित्र बना दिया जाए। और इस तरह वासना के स्थान पर धर्म और नेतिकता आ जाएँ और कामवासना धर्म और नैतिकता की सी पवित्रता हासिल कर ले।

अतः इसी प्रोटोकॉल में कहा गया :

"हमने डारविन, मार्क्स और नितशे के प्रस्तावों को रिवाज देकर उनकी कामयाबी का लाह्य-ए-अमल तैयार कर लिया है। इन तीनों की शिक्षाओं से ग़ैर यहूदियों में पैदा होनेवाले नैतिक दीवालियेपन से हम अच्छी तरह परिचित हैं।" (देखें 'इनसानी ज़िन्दगी में जुमूद व इरतिक़ा' पेज 62, 63)

उपर्युक्त कथनों से ज्ञात होता है कि दुनिया में लिंग सम्बन्धी पथभ्रष्टता पैदा करना मानव-संसार के विरुद्ध एक यहूदी साज़िश है। इसके बावजूद जो लोग इन सिद्धान्तों पर आसमानी हिदायात की तरह यक़ीन करते हैं, उनपर मातम ही किया जा सकता है।

एवं बन्धन को सहन करने के लिए तैयार नहीं है। हमारे समाज में प्रचलित रीति-रिवाज एवं नैतिक मूल्यों की पाबन्दी मनुष्य को अपनी वासनात्मक इच्छा की पूर्ति में बाधाएँ उत्पन्न करती हैं, जिनके कारण उसे इन इच्छाओं को दबाना पड़ता है। ये दबी हुई इच्छाएँ ख़त्म नहीं होतीं बल्कि उसके अन्तरचेतना में चली जाती हैं और स्वप्न में अपना प्रकटिकरण खोज लेती हैं। लेकिन इस इच्छा को दबाने से मानव मस्तिष्क में उलझन पैदा हो जाती है और मानसिक उलझनें उत्पन्न हो जाती हैं, ज़ो अन्य बहुत-से रोग उत्पन्न करने का कारण बन जाती हैं। फ्रायड के अनुसार समाज में काम-तृप्ति पर किसी प्रकार की कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए। धर्म, नैतिकता एवं सभ्यता सब कामवासना को छिपाने से पैदा होते हैं और कामवासना छिपाने की क्रिया से मन एवं स्नायुतंत्र पर अति गम्भीर प्रभाव पड़ते हैं। इस प्रकार मानव-मन उलझनों और बेचैनियों से ग्रस्त हो जाता है। उसका कहना है कि नैतिकता अपने स्वाभाविक स्तर पर भी एक अत्याचार है। अतः वह कहता है कि व्यक्ति को इस रोग से बचाने के लिए सभ्य-समाज को भी अविकसित एवं असभ्य जातियों का अनुसरण करना चाहिए।

> "जैविक दृष्टि से यह कहा जाता सकता है कि वासनात्मक जीवन के आरम्भिक काल की उत्तेजनाओं पर क़ाबू पाने के काम में असफलता व नुक़सान का सामना करना पड़ता है........... और इस परिणाम की अनदेखी नहीं की जा सकती कि यदि बच्चे के अहं को इस साधना से सुरक्षित रखा जाता या अन्य शब्दों में उसके वासनात्मक जीवन को निरंकुश छोड़ दिया जाता, जैसा कि अनेक अविकसित जातियों में होता है, तो स्नायुविकार से उसका सुरक्षित रहना सम्भव था[1]।"

अन्य विचारक

कार्ल मार्क्स व फ्रायड के बाद नव माल्थसी विचार के अनुयायियों की एक लम्बी क़तार पैदा हो गई जो उन विचारों एवं दृष्टिकोणों को फैलाने तथा उनकी व्याख्या करने में व्यस्त हो गए। उनमें से कुछ नमूने निम्नलिखित हैं—

1. 'तहलीले-नफ़्स का इजमाली ख़ाका' पेज-75 सिगमण्ड फ्राइड। अनुवाद : प्रो॰ ज़फ़र अहमद सिद्दीक़ी।

एक फ्रांसीसी साहित्यकार पाल रदां अपनी किताब (Laxmorable De-Lamaur) में नौजवानों से कहता है—

"सभ्य एवं बौद्धिक मनुष्य बनो। अपनी इच्छाओं एवं वासना के पुजारियों को अपना पूज्य मत बनाओ। मूर्ख है वह जो प्रेम का मन्दिर बनाकर उसमें एक ही आराध्य का पुजारी बनकर बैठ जाता है। आनन्द के हर क्षण में एक नए मेहमान का स्वागत करना चाहिए।"

एक और विचारक बेबल (Bable) लिखता है—

"औरत और मर्द अन्ततः हैवान ही तो हैं। क्या जानवरों के जोड़ों में विवाह और वह भी स्थायी विवाह का कोई सवाल पैदा हो सकता है।"

डॉ॰ ड्रेस्डल लिखता है—

"हमारी सभी इच्छाओं की तरह प्रेम भी एक परिवर्तनशील वस्तु है। इसको एक विधि के साथ बाँध देना प्राकृतिक नियमों में परिवर्तन कर देना है। स्वच्छन्द सम्बन्ध एक उच्चतर नैतिकता का द्योतक है।"

पॉल रोबिन लिखता है—

"पिछले पच्चीस वर्षों में हमको इतनी सफलता तो मिल चुकी है कि अवैध बच्चों को लगभग वैध बच्चों के समान मान लिया गया है। अब सिर्फ़ इतनी कमी और शेष है कि अब केवल प्रथम प्रकार के ही बच्चे पैदा हुआ करें ताकि तुलना का प्रश्न ही न उठे।"

ये थे वे दृष्टिकोण जो यूरोप में अनैतिकता, चरित्रहीनता, स्वेच्छाचारिता, नग्नता तथा निरंकुश काम-वासनापूर्ति का वातावरण उत्पन्न करने के लिए दुष्प्रचारित किए जा रहे थे और यूरोप का ईसाई समाज अपने पुराने शत्रु (यहूदियों) की इन विषैली दवाओं को रोग मुक्ति का साधन समझकर अपने कण्ठ से नीचे उतारने में लगा हुआ था। जिसने उन्हें ईश्वर, धर्म तथा नैतिक मूल्यों की बहुमूल्य सम्पदा से वंचित करके केवल वासना-ग्रस्त जानवरों में बदलकर रख दिया है।

(2)

बर्थ-कंट्रोल आन्दोलन और उसकी सफलता के कारण

बर्थ-कंट्रोल आन्दोलन का आरम्भ तथा उसकी सफलता एवं लोकप्रियता के पीछे कार्यरत कारणों पर विचार करने से पहले हमें उस वास्तविकता पर दृष्टि रखनी चाहिए कि इन यहूदी दार्शनिकों ने उन दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करके किन उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया है।

यहूदियों की आस्था

यहूदियों का विश्वास है कि वे ईश्वर के अतिप्रिय सेवक हैं, जिन्हें ईश्वर अवश्य ही स्वर्ग का अधिकारी बनाएगा। ईश्वर ने इस जाति को संसार में पैदा ही इसलिए किया है कि वह सम्पूर्ण संसार पर शासन करे और सारे संसार के लोग इस ज़ाति के दास बनकर रहें।

यहूदियों के दो शत्रु

राजनीतिक शासन एवं धार्मिक नेतृत्व के मार्ग में बाधक बननेवाले सभी लोगों को यहूदी अपना शत्रु समझते हैं। इतिहास साक्षी है कि जब हज़रत ईसा *(अलैहि॰)* ने अपने बारे में ईशदूत होने की घोषणा की तो उनके सबसे अधिक विरोधी यहूदी ही थे। उन्होंने किसी को भी आपके निकट नहीं आने दिया। परिणाम यह हुआ कि हज़रत मसीह *(अलैहि॰)* के जीवन भर के धर्म-प्रचार एवं सन्मार्ग की ओर आह्वान के पश्चात् आपको केवल बारह अनुयायी ही प्राप्त हो सके। इन्हीं यहूदियों ने आपके विरुद्ध फ़तवा (धर्मादेश) दिया। आपको क़ैद करवाया तथा सलीब (सूली) दिलवा दी। इसके पश्चात् भी यहूदी ईसाइयों को हमेशा अपना शत्रु समझते रहे। तत्पश्चात् जब हज़रत मुहम्मद *(सल्ल॰)* ईश-दूत बनाकर भेजे गए और आप *(सल्ल॰)* ने ईश-दूतत्व कार्य आरम्भ किया तो आप *(सल्ल॰)* के भी सबसे बड़े शत्रु यही यहूदी निकले। उन्होंने ही अरब

के बहुदेववादियों को इस्लाम के विरोध में खड़ा कर दिया। उन्हें भड़का कर युद्ध करवाते रहे। इस्लाम के विरुद्ध सदैव षड्यंत्र रचते रहे तथा जब इस्लाम के उस बढ़ते हुए क़दम को रोकने में असफल हो गए तो अपने एक शत्रु के द्वारा दूसरे शत्रु को मौत के घाट उतारने के असफल प्रयास करने में व्यस्त हो गए। अतएव इन्होंने ही ईसाइयों और मुसलमानों को सलीबी जंगों (ईसाई धर्म युद्धों) में उलझाए रखा और इस प्रकार सदियों के धार्मिक युद्धों के पश्चात् जब मुसलमानों की शक्ति तोड़ने में सफल हो गए तो अब उन्हें अपने दूसरे शत्रु को मिटाने की चिन्ता हुई। किन्तु अभी तक उन्हें इतनी शक्ति तो नहीं प्राप्त हो सकी थी कि ईसाइयों के विरुद्ध युद्ध-स्थल में कूद पड़ते। अतः अब उन्होंने एक ऐसा मैदान अपने शत्रु को मौत के घाट उतारने के लिए चुना जिसमें उनकी तो अपनी कोई हानि न हो मगर शत्रु विनष्ट होकर रह जाए। और यह मैदान– सिद्धान्त और दर्शन का मैदान है। मार्क्स और फ्रायड उसके नायक हैं।

मानव शरीर में दो महत्वपूर्ण चीज़ें ईश्वर ने रखी हैं। ये दोनों चीज़ें जितनी महत्त्वपूर्ण हैं उतनी ही नाज़ुक भी हैं। यही दोनों मनुष्य की सबसे बड़ी कमज़ोरियाँ भी हैं। इनमें से एक सांसारिक भोग-विलासिता है तो दूसरी यौनाचार। धर्म और उसपर आधारित नैतिक मूल्यों ने इन दोनों कमज़ोर पहलुओं पर कठोर पहरे लगा रखे थे। मार्क्स के दर्शन ने सांसारिक भोग-विलासिता को दार्शनिक आधार उपलब्ध कराया तथा फ्रायड ने यौन पक्ष पर से सारे पहरे उठाकर और धर्म व नैतिकता को निरर्थक प्रमाणित करके मनुष्य के उन दोनों नाज़ुक पहलुओं पर अकस्मात हमला करने की तमाम सम्भावनाएँ पैदा कर दीं और स्वयं ही दोनों ने छापे मारने आरम्भ कर दिए।

विचार करें, माल्थस ने अपना जनसंख्या सिद्धान्त सन् 1798 ई॰ में प्रस्तुत किया था। उस समय इसपर आलोचनाएँ भी की गईं और प्रतिपक्षी दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किए गए थे। उसके बाद सौ वर्षों तक इस सिद्धान्त को विचारणीय ही नहीं समझा गया। उन सौ वर्षों के अन्दर चार बार पच्चीस वर्षीय अन्तराल भी गुज़र चुके थे तथा देखा जा चुका था कि किसी भी पच्चीस वर्षीय अन्तराल में दुनिया के किसी भी

देश की जन-संख्या दो गुनी नहीं हुई है, जैसा कि माल्थस ने दावा किया था। यह इस बात का व्यावहारिक प्रमाण भी था कि माल्थसी जनसंख्या सिद्धान्त काल्पनिक मात्र है। उसका आधार वास्तविकता की चट्टान पर नहीं अपितु केवल रेत के टीले पर स्थापित किया गया है।

अब सोचिए सौ वर्ष पश्चात् माल्थसी सिद्धान्त की आवश्यकता होती है। उसे खोजकर निकाला जाता है, धूल साफ़ की जाती है तथा फिर माल्थस के नाम का प्रयोग करके नव-माल्थसी दर्शन पेश किया जाता है और उसमें से भी केवल सन्तान निरोधक अंश। फिर आलोचना भी की जाती है तो उसके उन उपायों पर जो विशुद्ध रूप से धार्मिक नैतिकता पर आधारित हैं और उसी पादरी का नाम लेकर नैतिकता रूपी महल की तमाम जड़ों को खोद कर फेंक दिया जाता है तथा सन्तान की उत्पत्ति रोकने के लिए कृत्रिम उपायों का प्रयोग करने का 'फ़तवा' (धर्मादेश) दे दिया जाता है। क्या विषय की यह स्थिति किसी गम्भीर षड्यन्त्र की ओर संकेत नहीं करती? फिर यह बात भी याद रहे कि लगभग उसी युग में मार्क्स का समाजवादी सिद्धान्त आ चुका था तथा फ्रायड का दर्शन भी संकलित हो रहा था। सम्भव है कि ये नव-माल्थसी सिद्धान्त भी किसी यहूदी मस्तिष्क की उपज हों। इसलिए कि उसके निशाने के अन्तर्गत उनके दोनों शत्रु ही नहीं बल्कि संसार की सम्पूर्ण जातियाँ आ जाती हैं।

सन्तान वृद्धि निरोधक आन्दोलन

माल्थस ने सन् 1798 ई॰ में अपना जनसंख्या सिद्धान्त दिया था। सौ वर्षों तक उसपर कोई ध्यान नहीं दिया गया। यदि उस अवधि में माल्थस के प्रस्तावित सुरक्षात्मक उपायों को प्रसारित किया गया होता तो मानवता उच्चतर, नैतिक एवं श्रेष्ठ आचरण से सुसज्जित हो गई होती। किन्तु उसपर ध्यान नहीं दिया गया। बल्कि ज्यों ही नव-माल्थसी दार्शनिकों ने अपनी व्याख्या प्रस्तुत की उसे हाथों-हाथ लिया गया और फिर एक स्थायी आन्दोलन चालू किया गया, जिसने धीरे-धीरे संसार को अपनी लपेट में ले लिया। यदि वास्तव में जनसंख्या वृद्धि इतनी ख़तरनाक थी तो कम से कम माल्थस के सिद्धान्तों के आधार पर उसे

सीमित करने का प्रयत्न किया गया होता और यदि वे सिद्धान्त अपने उद्देश्य में असफल हो जाते तब नए उपायों पर विचार किया जा सकता था। परन्तु माल्थस को तो ध्यान देने योग्य नहीं समझा गया और ज्यों ही नव-माल्थसी दार्शनिकों ने सन्तानोत्पत्ति रोकने के कृत्रिम उपायों की अनिवार्यता का "फ़तवा" (आदेश) दिया उसे तुरन्त हाथों-हाथ लिया गया और एक आन्दोलन आरम्भ करके उसे सारे संसार में फैला दिया गया। जबकि माल्थस के प्रस्तुत किए हुए ख़तरे ही व्यावहारिकता की कसौटी पर ग़लत साबित हो चुके थे। क्या इस व्यवहार के पीछे किसी षड्यन्त्र का आभास नहीं होता?

वास्तव में यह आन्दोलन ऐसे लोगों के हाथों आरम्भ किया गया है, जो यह समझ बैठे हैं कि यह सृष्टि अपने आप बन गई और इसी प्रकार चल रही है। संसार में मनुष्य भी इसी प्रकार पैदा हो जाते हैं। अतः जो लोग अपने माँ-बाप की मूर्खता के कारण, पहले पैदा हो चुके हैं उनकी बुद्धिमत्ता का तक़ाज़ा है कि वे अपने बाद आनेवालों के लिए सारे रास्ते बन्द कर दें। उन लोगों का विचार है कि सर्वप्रथम तो इस संसार का बनानेवाला कोई ईश्वर है नहीं और यदि है भी तो वह ऐसा क़मज़ोर है कि किसी आनेवाले को रोकने की शक्ति ही नहीं रखता और यदि कोई व्यक्ति इस संसार में ज़बरदस्ती आ जाता है तो वह इसका भी सामर्थ्य नहीं रखता है कि उसके जीवन-साधन का प्रबन्ध कर सके। अतः प्रत्येक आनेवाला मौजूदा लोगों की रोज़ी में से हिस्सा छीनकर उन्हें भूखा रहने पर विवश कर देता है।

कायनाती हक़ीक़तें

इसके विपरीत ऐसे लोग, जो यह विश्वास रखते हैं कि इस विश्व तथा मनुष्यों को भी एक सर्वज्ञ विधाता ने उत्पन्न किया है। वह विधाता भली प्रकार जानता है कि संसार के किस देश में और संस्कृति के किस स्तर तक पहुँचने पर किस युग में उसके संसार को चलाने के लिए किस-किस प्रकार के कितने लोगों की आवश्यकता है। वह एक शक्तिशाली और व्यापक योजना के अन्तर्गत उन्हें उत्पन्न करता रहता है। वह जिसको संसार में भेजता है, उसकी आजीविका की भी पूरी

व्यवस्था करने की क्षमता रखता है। ऐसे लोग उन काल्पनिक दर्शनों और षड्यंत्रकारी आन्दोलनों में कोई आकर्षण महसूस नहीं करते। बल्कि ऐसे लोग आधुनिक विज्ञान के अनुसंधानों और आविष्कारों को देखते हैं तो उनके विश्वास में और अधिक दृढ़ता उत्पन्न हो जाती है और ईश्वर की असाधारण क्षमता, उसकी तत्त्वदर्शिता और सर्वज्ञता पर दृढ़ विश्वास हो जाता है और वे सोचने लगते हैं कि काश! ये पथ-भ्रष्ट लोग इसी पर चिन्तन कर लेते—

"उसने (ईश्वर ने) इस सीमित क्षेत्र (पृथ्वी) पर भाँति-भाँति की सृष्टियों का निर्माण किया है, जिनमें से प्रत्येक के अन्दर प्रजनन क्रिया की ऐसी अपार शक्ति है कि यदि केवल एक ही प्रकार बल्कि कुछ क़िस्मों के केवल एक जोड़े की नस्ल को वह पूरी शक्ति के साथ बढ़ने दे तो एक अल्प अवधि के अन्दर सम्पूर्ण पृथ्वी तल केवल उसी नस्ल से पट जाए तथा किसी दूसरी नस्ल के लिए रत्ती भर स्थान शेष न रहे। उदाहरण स्वरूप वनस्पति की एक क़िस्म है जिसको (Sisym brium sophia) कहते हैं। इस क़िस्म की प्रत्येक इकाई में साधारणतया साढ़े सात लाख बीज होते हैं। यदि उसके केवल एक पौधे के सब बीज ज़मीन में उग जाएँ तथा तीन वर्ष तक उसकी नस्ल बढ़ती रहे तो पृथ्वी में दूसरी चीज़ों के लिए एक चप्पा भूमि शेष न रहे। एक प्रकार की मछली (Star fish) बीस करोड़ अण्डे देती है। यदि उसकी केवल एक इकाई को अपनी पूरी नस्ल बढ़ाने का अवसर मिल जाए तो तीसरी-चौथी पीढ़ी तक पहुँचते-पहुँचते पूरे संसार के समुद्र उससे लबालब भर जाएँ तथा उनमें पानी की एक बूँद की भी जगह शेष न रहे। दूर क्यों जाते हैं, स्वयं मनुष्य ही की प्रजनन शक्ति को देख लीजिए। एक व्यक्ति के शरीर से एक समय में जो वीर्य निकलता है उससे एक ही समय तीस-चालीस करोड़[1] औरतें

1. इस अवसर पर यह बात भी याद रखने की है कि एक औरत जब बच्ची होती है उस समय उसके अण्डकोष में पाँच लाख अण्डे होते हैं। जैसे-जैसे वह जवानी की ओर बढ़ती रहती है अण्डे घटते रहते हैं, यहाँ तक कि जवानी की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते उनकी संख्या मात्र आठ सौ रह जाती है। उसके बाद ये अण्डे मासिक धर्म के दौरान निकलते रहते हैं। इन अण्डों में से मात्र आठ-दस ही को यह

गर्भ धारण कर सकती हैं। यदि केवल एक ही पुरुष की पूरी प्रजनन-क्षमता को सक्षम रूप से क्रियान्वित होने का अवसर मिल जाए तो कुछ वर्षों में पूरी पृथ्वी उसकी सन्तान से खचा-खच भर जाए। परन्तु वह कौन है जो हज़ारों-लाखों वर्षों से पृथ्वी पर उन अनगिनत क़िस्मों को इस प्रबल प्रजनन-शक्ति के साथ उत्पन्न कर रहा है तथा किसी क़िस्म को भी उसकी सुनिश्चित सीमा से आगे नहीं बढ़ने देता? ......एक एक सेल वाले जन्तु (Uni-Cellular Organism) के अन्दर वृद्धि की इतनी शक्ति होती है कि यदि उसको निरन्तर आहार मिलता रहे तथा निरन्तर विभाजन का अवसर प्राप्त हो जाए तो पाँच वर्ष के अन्दर वह इतना जैविक तत्व उत्पन्न कर सकता है, जो पृथ्वी के आकार से दस हज़ार गुना अधिक होगा। किन्तु वह कौन है जिसने जीवन-शक्ति के इस ख़ज़ाने पर नियन्त्रक बहाल कर रखे हैं? वह कौन है जो इस ख़ज़ाने से तरह-तरह के जीवधारी निकाल रहा है तथा ऐसे सही अनुपात से निकाल रहा है, कि न उसमें कभी अधिकता होती है न कमी?"

(इस्लाम और बर्थ-कंट्रोल, मौलाना मौदूदी *(रह.)*, पृष्ठ 122-24)

अवसर मिलता है कि वे गर्भ-धारण के काम आएँ। उनपर भी पाबन्दी है कि एक महीने में केवल एक ही अण्डा अण्डकोष से निष्कासित हो। सोचिए, कि जब ख़ुदा एक मर्द में तीस-चालीस करोड़ जीवाणु एक वक़्त में पैदा कर सकता है तो क्या वह एक समय में इतने अण्डे औरत में पैदा करके सारे जीवाणुओं से बच्चे पैदा नहीं करा सकता था? या फिर कम-से-कम पाँच लाख अण्डे जो औरत के अण्डकोष में पल रहे होते हैं उन्हीं को बच्चे पैदा करने के योग्य बनाने की सामर्थ्य नहीं रखता। यदि ऐसा हुआ करता तो संसार की जनसंख्या कब की इतनी बढ़ गई होती कि यहाँ किसी और सृष्टि के लिए जगह ही शेष न रहती। फिर इसपर भी विचार कीजिए कि औरत और मर्द जीवनकाल में कितनी बार सम्भोग करते हैं और हिसाब लगाइए कि इस पूरी मुद्दत में मर्द कितने जीवाणु निष्कासित करता है और जीवनकाल में उसके कितने बच्चे पैदा हुआ करते हैं। ख़ुदा की इस ज़बरदस्त व्यवस्था पर भरोसा न करना और उसकी तत्त्वदर्शिता को अपूर्ण-सृष्टि समझकर हस्तक्षेप करना कितनी बड़ी भूल है। ख़ुदा से इस बग़ावत का जो भयावह परिणाम होना चाहिए उसे अगले पृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है।

ये वैज्ञानिक तथ्य ऐसे हैं कि इसके सामने आने से एक ईमानवाले की आस्था में वृद्धि होती ही है तथा संसार के विशिष्ट वैज्ञानिक भी अब इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि वास्तव में इस जगत् का एक नियन्ता है जिसने इसकी रचना की है तथा जिसके सशक्त अधिकार में यह इस प्रकार जकड़ा हुआ है कि उससे विमुख होने की उसमें न तो शक्ति ही है और न ही वह साहस कर सकती है।

इन वैज्ञानिक तथ्यों के सामने होते हुए भी तथा माल्थस के जनसंख्या वृद्धि के सिद्धान्तों के काल्पनिक होने और प्रायोगिक कसौटी पर ग़लत प्रमाणित होने के बावजूद बर्थ-कंट्रोल को एक आन्दोलन के रूप में चलाने तथा उसे निरन्तर जारी रखने के संकल्प से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसके पीछे वास्तविकता की परख तो है नहीं, बल्कि विश्वसनीय रूप से उसके कारक कुछ अन्य उद्देश्य हैं जिनका स्पष्टीकरण इस आन्दोलन के जनक अपने हितों के विरुद्ध समझते हैं। इसी लिए उन्हें छिपाकर रख लिया है और मात्र ग़रीबी का भय, विनाश की त्रासदी एवं मृत्यु-भय उत्पन्न करके सशक्त प्रचार के द्वारा इस आन्दोलन को निरन्तर जारी रखे हुए हैं।

आन्दोलन का आरम्भ

नव-माल्थसी चिन्तकों के दृष्टिकोण के सामने आते ही सन् 1876 ई॰ में श्रीमती एनी बेसेन्ट और चार्ल्स ब्रेडला ने डॉ॰ नोल्टन की किताब 'दर्शन का परिणाम' इंग्लैण्ड से प्रकाशित की। सन् 1877 ई॰ में डॉ॰ ड्रेसडेल की अध्यक्षता में एक संस्था की स्थापना की गई, जिसने बर्थ कंट्रोल के पक्ष में प्रचार-प्रसार आरम्भ कर दिया। सन् 1879 ई॰ में श्रीमती बेसेन्ट की किताब "जन-संख्या सिद्धान्त" को प्रकाशित किया गया। सन् 1881 ई॰ में इस आन्दोलन ने हॉलैन्ड, बेल्जियम, फ्राँस तथा जर्मनी में अपने पैर जमा लिए और धीरे-धीरे यूरोप तथा अमेरिका के अधिकांश भागों तक फैल गया तथा लोगों को बर्थ-कंट्रोल के लाभों और उसकी आधुनिक विधियों से अवगत कराने लगा। इस काम के लिए औषधियाँ और आधुनिक यन्त्रों का आविष्कार किया गया। जन साधारण तक उन्हें पहुँचाने का प्रबन्ध किया गया। जगह-जगह अस्पताल बनाए गए ताकि इस विषय में विशेषज्ञतापूर्ण परामर्श दिए जा सकें। इस प्रकार यह आन्दोलन बढ़ता और लोकप्रिय होता रहा और अब सारे

संसार में फैल चुका है। वर्तमान में इस आन्दोलन का संरक्षण संयुक्त राष्ट्र संघ के हाथों में है और सारे संसार को विशेष रूप से एशिया तथा अफ़्रीक़ा के देशों से इसको अपनाने व जनप्रिय बनाने पर ज़ोर दिया जा रहा है।

बर्थ-कंट्रोल पर विशेषज्ञों के मत

कृत्रिम गर्भ-निरोधक उपाय मानव-स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं। अतः इसकी ओर विशेषज्ञ निरन्तर सावधान कर रहे हैं। उदाहरणस्वरूप ब्रिटेन के नेशनल बर्थ रेट कमीशन ने सन् 1927 ई॰ में रिपोर्ट दी—

> "गर्भ-निरोधक साधनों के प्रयोग से पुरुषों के शारीरिक कार्य प्रणाली में विकार उत्पन्न हो सकता है। तात्कालिक रूप से उनमें पुरुषत्व की दुर्बलता या नपुंसकता भी पैदा हो सकती है।"

यही कमीशन आगे कहता है—

> "गर्भ-निरोधक उपायों का परिणाम यह होता है कि औरत के स्नायु-तन्त्र व्यवस्था में अतिविकृति उत्पन्न हो जाती है। उसमें उच्छृंखलता और चिड़चिड़ापन पैदा हो जाता है। जब उसकी भावनाओं की सन्तुष्टि नहीं होती तो पति के साथ उसके सम्बन्ध ख़राब हो जाते हैं।"

डॉक्टर ल्योनार्ड अपनी एक किताब में लिखता है—

> "जवानी के समय औरत के शरीर में जितने परिवर्तन होते हैं, सब यौन-क्रिया ही के उद्देश्य से होते हैं। मासिक धर्म के चक्र इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आते हैं कि नारी को बार-बार गर्भ धारण के लिए तैयार करें। एक नारी या ऐसी नारी में जो अपने आपको गर्भधारण करने से रोकती है, मासिक धर्म का प्रत्येक चक्र उन सभी अंगों की निराशा के साथ समाप्त होता है, जो इस मासिक धर्म-चक्र में गर्भ धारण के लिए तैयार किए गए थे। इस नैसर्गिक अपेक्षा की पूर्ति न होने तथा प्रजनन अंगों के निष्क्रिय रहने का अनिवार्य परिणाम यह होता है कि प्रजनन अंगों के काम करने की क्षमता क्षीण हो जाती है और उनमें अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। मासिक धर्म

कष्टमय तथा अनियमित रूप से आने लगते हैं। छातियाँ ढुलक जाती हैं। चहरे की रौनक़ तथा सुन्दरता समाप्त हो जाती है और स्वभाव में उत्तेजना अथवा मलिनता उत्पन्न हो जाती हैं। यह याद रखना चाहिए कि मानव जीवन में उसकी लैंगिक-ग्रंथियों का अधिक महत्त्व है। जो ग्रंथियाँ दाम्पत्य-शक्ति उत्पन्न करती हैं, वही मनुष्य में शक्ति, सौन्दर्य तथा सक्रियता भी उत्पन्न करती हैं। इन्हीं से मनुष्य में नैतिकता के बहुत से गुण उत्पन्न होते हैं। युवावस्था के समय जब ग्रंथियों की क्रिया तीव्र हो जाती है तो जिस प्रकार मनुष्य में सन्तानोत्पत्ति की योग्यता उत्पन्न होती है, उसी प्रकार उसमें सौन्दर्य, शोभा, मानसिक शक्ति, पौरुष-शक्ति, जवानी तथा कार्यकुशलता भी उत्पन्न होती है। यदि उन ग्रंथियों के नैसर्गिक उद्देश्य की पूर्ति न की जाएगी तो ये अपनी अधीनस्थ क्रिया अर्थात शक्ति-वर्धन को भी छोड़ देंगी। विशेषतः औरत को गर्भवती होने से रोकना वास्तव में उसकी पूरी मशीनरी को निष्क्रिय एवं उद्देश्यहीन बनाना है।"

(इस्लाम और बर्थ-कंट्रोल, पृ॰ 98, 99 से उद्धृत)

डॉ॰ सीता वती अपनी किताब "फ़ैमिली प्लानिंग" के द्वारा सचेत करती हैं—

"कुछ सूरतों में बर्थ-कंट्रोल के परिणाम ख़तरनाक निकलते हैं। दिल का सुकून जाता रहता है, मानसिक तनाव पैदा हो जाता है, नींद ग़ायब हो जाती है, इनसान हिस्टीरिया का शिकार हो जाता है, मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है, औरतें बाँझ हो जाती हैं और पुरुषों की लैंगिक शक्ति क्षीण हो जाती है।"

आन्दोलन की सफलता के कारण

इन सारे तथ्यों के सामने आ जाने के बाद भी यह आन्दोलन उन्नति करता रहा तथा सर्वप्रिय होता चला गया। यद्यपि यह आन्दोलन नारी की मातृत्व-भावना के बिल्कुल प्रतिकूल था, फिर भी उसको लोक-प्रसिद्धि प्राप्त होती रही। इस लोक-प्रियता के अनेक कारण हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

1. नव-माल्थसी दार्शनिकों के दृष्टिकोणों का प्रसारण, जिनके परिणामस्वरूप धर्म की पकड़ ढीली पड़ रही थी और नैतिक

मूल्यों का महत्त्व समाप्त होने के साथ-साथ स्वच्छन्द यौनाचार कोई निन्दनीय बात नहीं रह गई थी।

2. महिलाएँ कारख़ानों दफ़्तरों में नौकरी करने लगी थीं। अतः नौकरी के साथ-साथ उन्हें गर्भावस्था के कष्टों को सहन करना तथा बच्चे को जन्म देने के पश्चात् लम्बा अवकाश लेकर घर बैठे रहना असहनीय भार मालूम होने लगा था।

3. इसी बीच विश्वयुद्ध भी हो चुके थे। पहला विश्व युद्ध (सन् 1914-18 ई॰) में एक करोड़ लोगों को तथा दूसरे विश्वयुद्ध (सन् 1939-45 ई॰) में चार करोड़ लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया था। इन पाँच करोड़ लोगों की पत्नियाँ, बहनें और बेटियाँ बेसहारा हो चुकी थीं। उनके भरण-पोषण का दायित्व उठाने के लिए कोई मौजूद नहीं था। ख़ुद युद्ध की मारी हुकूमतें भी इतनी बड़ी संख्या को आर्थिक सहायता नहीं दे सकती थीं। फिर उन औरतों के पेट ही की समस्या नहीं थी बल्कि उनकी यौन आवश्यकताएँ भी एक महत्त्वपूर्ण समस्या थी। इस प्रकार उस समय यूरोप में असंख्य महिलाएँ पके हुए फल की भाँति सहज उपलब्ध थीं। स्पष्ट है कि ये यौन सन्तुष्टि के साथ सन्तानोत्पत्ति की मुसीबत अपने साथ कैसे लगातीं। अतः उन्होंने सन्तान से बचने के लिए गर्भ निरोधक उपायों को पूर्ण सहमति के साथ प्रयोग किया।

4. धार्मिक बन्धन ढीले पड़ने तथा नैतिक मर्यादाएँ समाप्त होने के साथ स्त्रियों व पुरुषों का स्वतन्त्र मिलन और यौन-क्रिया भी इस आन्दोलन की सफलता का एक बड़ा कारण है।

5. भौतिकवादी सभ्यता का अनिवार्य परिणाम स्वार्थपरता होता है। उस समय का व्यक्ति इतना स्वार्थी हो गया था कि अपनी कमाई में किसी को सम्मिलित करने के लिए तैयार नहीं था। यहाँ तक कि अपनी सन्तान को भी नहीं।

6. भौतिकवादी सभ्यता का दूसरा अनिवार्य गुण स्वार्थ-पूर्ण संस्कृति की उत्पत्ति है। इसका परिणाम यह हुआ कि आदमी स्वयं तो सारे सुख भोगना चाहता है परन्तु उसके परिणाम-स्वरूप उत्पन्न होनेवाले कर्तव्यों का बोझ उठाने के लिए तैयार नहीं था। इसलिए बच्चे नहीं चाहता था।

7. इस आन्दोलन को सार्वजनिक बना दिया गया था तथा बच्चे होने की स्थिति में निर्धनता व भुखमरी में ग्रस्त होने का भय

उत्पन्न करके लोगों को इस आन्दोलन का समर्थक बनाया जा रहा था।

8. पूँजीपति लोग अपना व्यापार बढ़ाने तथा अधिक से अधिक लाभ-प्राप्ति के लिए नित-नई वस्तुओं का आविष्कार कर रहे थे। प्रचार-प्रसार के द्वारा उन वस्तुओं को जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मनवाया जा रहा था। ताकि जन-साधारण की कमाई का अधिकांश भाग लूटकर अपनी तिजोरियाँ भर लें। अतः वे नहीं चाहते थे कि लोग अधिक बच्चे उत्पन्न करके अपनी कमाई का अधिकांश भाग उनपर ख़र्च करते रहें। अतः उन्होंने भी इस आन्दोलन का समर्थन किया और अपना सम्पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

9. सरकारी नीतियों ने भी इस आन्दोलन की उन्नति में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। युद्ध की मारी हुई सरकारें जन-साधारण की समस्याओं में उलझने की अपेक्षा राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग वैज्ञानिक आविष्कारों तथा विनाशकारी शस्त्रों की तैयारी में ख़र्च करना चाहती थीं। वे अपनी खोई हुई साख को बचाने के लिए अधिक से अधिक शक्ति प्राप्त करने की चिन्ता में लगी हुई थीं। इसी लिए वे नहीं चाहती थीं कि जनसंख्या बढ़कर उनका ध्यान अपनी ओर खींचे। वे भी चाहती थीं कि कम से कम जन-संख्या हो ताकि राष्ट्रीय कोष का अधिकांश भाग वैज्ञानिक खोजों तथा सुरक्षा के क्षेत्र में ख़र्च किया जा सके।

10. निकाह के पवित्र सम्बन्ध को आहत करना, तलाक़ को मुश्किल बनाना, तलाक़ दी गई महिला को स्थाई समस्या बना देने का चलन बढ़ा, जिसके कारण लोग विवाह करने की अपेक्षा स्वतन्त्र यौन-क्रिया को प्रमुखता देने लगे। स्पष्ट है ऐसी स्थिति में गर्भ-निरोधक साधनों का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है।

11. गर्भ-निरोधक वस्तुओं की सुलभता और उन्हें प्रत्येक व्यक्ति की पहुँच तक पहुँचा देना।

ये थे वे कारण जिनकी वजह से इस अप्राकृतिक और अत्याचारपूर्ण तथा स्वार्थपरक आन्दोलन का उत्थान हुआ और लोकप्रियता प्राप्त करता रहा यहाँ तक कि उसने सम्पूर्ण यूरोपीय राष्ट्रों को अपने चंगुल में ले लिया और अब एशिया के देशों को अपना निशाना बनाए हुए है।

(3)

आन्दोलन की लोकप्रियता, प्रभाव व परिणाम

दो प्राकृतिक विशेषताएँ

मनुष्य एक बुद्धि एवं विवेक रखनेवाला प्राणी है जिसे सृष्टिकर्ता ने अन्य सभी जीवधारियों के मुक़ाबले विशेष योग्यता प्रदान की है। उसकी प्रकृति में दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ उत्पन्न कर दी हैं जो उसकी विशेषता भी है और निर्बलता भी। उनमें से एक यह है कि उसके जीवन के तमाम संसाधन भौतिक संसार से सम्बन्धित हैं। अतः उसे जीवन यापन के लिए संसार की भौतिक वस्तुओं को प्राप्त करना और उन्हें अपने लिए लाभप्रद बनाना आवश्यक हो गया है। उसकी इस विशेषता के फलस्वरूप असंख्य ज्ञान एवं कलाओं तथा विज्ञान एवं तकनीक का एक संसार अस्तित्व में आ गया है, जिसके द्वारा मनुष्य ने भौतिक संसार को अपने लिए न केवल लाभदायक बना लिया है अपितु उसे वशीभूत करने में लगा हुआ है। परिणामतः मानव संस्कृति व सभ्यता का विकास हो रहा है तथा निरन्तर होता जा रहा है, जिसके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि उसका अन्त कब होगा।

मनुष्य में दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता वासनात्मक संवेदना है जिसके कारण संसार में वंश परम्परा निरन्तर चल रही है। यह एक ऐसी संवेदना है जो कि संसार के सभी जीवधारियों ही में नहीं है बल्कि वनस्पति जगत् में भी पाई जाती है। लेकिन दूसरे जीवधारियों तथा मनुष्यों की संवेदना में आधारभूत अन्तर यह है कि अन्य प्राणियों में यह संवेदना सोई रहती है। एक विशेष समय व मौसम में जागृत होती है। कुछ दिन बाद फिर सो जाती है। मगर मनुष्य में यह संवेदना सदैव जागृत रहती है और कभी भी सोती नहीं है। दूसरी बात यह कि अन्य प्राणियों की मादा (Female) तथा मानव जाति की मादा में यह भी अन्तर है कि किसी

अन्य प्राणी की मादा में कौमार्य का पर्दा नहीं होता। यह केवल मानव जाति की मादा को ही प्रदान किया गया है।

इस अन्तर को भी देखिए

जानवरों के बच्चे पैदा होने के कुछ घंटों बाद ही चलने-फिरने का प्रयत्न करने लगते हैं तथा एक-दो दिनों ही में चलना आरम्भ कर देते हैं। एक माह भी नहीं बीतता कि वे अपना चारा खाना शुरू कर देते हैं। माँ का दूध पीते अवश्य हैं लेकिन चारा भी खाते हैं। इसके विपरीत मानव-शिशु को देखिए, उनके बैठने, चलने-फिरने के लिए महीनों का समय लग जाता है। फिर उन्हें बोलना सिखाने की आवश्यकता पड़ती है। कोई भी काम सिखाने के बाद ही सीख पाते हैं। नैतिकता एवं शिष्टाचार के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। अपना-पराया तथा अच्छा-बुरा बताना पड़ता है। वे इतने कोमल होते हैं कि मौसमों के साधारण परिवर्तनों से भी उनको सुरक्षा की आवश्यकता रहती है। ज़रा सी चूक से वे रोग-ग्रस्त हो जाते हैं। उनके लिए जीवन की उपयोगी वस्तुएँ जुटानी पड़ती हैं। अर्थात् यह सिलसिला उस समय तक चलता रहता है जब तक कि बच्चा जवान होकर अपने पैरों पर खड़ा होने के योग्य नहीं हो जाता।

अब सोचिए :

1. क्या जो ईश्वर जानवरों में वासनात्मक संवेदना को नियत समय व मौसमों में जागृत करके फिर सुला देता है, वह मनुष्यों में भी ऐसा ही नहीं कर सकता था? कर सकता था और अवश्य ही कर सकता था, मगर फिर भी उसने ऐसा नहीं किया। आख़िर क्यों?
2. जिस ईश्वर ने जानवरों की सभी मादाओं (Females) को कौमार्य के पर्दे के बिना पैदा किया है, क्या वह औरतों को भी इसी प्रकार नहीं पैदा कर सकता था? कर सकता था और निश्चित रूप से कर सकता था। मगर उसने ऐसा नहीं किया। आख़िर इसमें क्या भेद हो सकता है?
3. जो ईश्वर जानवरों के बच्चों को कुछ घंटों में चलना तथा कुछ ही दिनों में चारा खाना सिखा सकता है, क्या वह मानव-शिशु

में भी ऐसा नहीं कर सकता था? वह कर सकता था और कुशलतापूर्वक कर सकता था। फिर भी उसने ऐसा नहीं किया। आख़िर इसका कारण क्या है?

ईश्वरीय तत्त्वदर्शिता

उपर्युक्त प्रश्नों पर चिन्तन करने पर महान ईश्वर की कुछ तत्त्वदर्शिता हमारी समझ में आती है–

1. मनुष्य में वासनात्मक संवेदना निरन्तर जागृत रहने से यह बात अनिवार्य मालूम होती है कि स्त्री-पुरुष दोनों के पास अपनी इस इच्छा-पूर्ति की कोई ऐसी स्थायी व्यवस्था रहे, जिसपर वे भरोसा भी कर सकें और इस ओर से सन्तुष्ट होकर अन्य अनिवार्य कर्तव्य पूरे कर सकें। इसके लिए यह आवश्यक है कि एक पुरुष तथा एक स्त्री को एक-दूसरे के लिए निर्धारित कर दिया जाए ताकि अपनी इस इच्छा-पूर्ति की ओर से दोनों सन्तुष्ट रहें तथा अपना क़ीमती समय अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए व्यक्तियों की खोज में बरबाद न करें। यही वह आधारभूत कारण है जहाँ से एक परिवार की आधारशिला स्थापित होती है। जानवरों को चूँकि कोई अपना समाज बनाना नहीं होता है बल्कि उनमें यह संवेदना केवल अपनी नस्ल को जारी रखने के लिए पैदा की गई है, इसलिए उन्हें आज़ादी होती है कि जब यह संवेदना जागृत हो तो जो भी विपरीत लिंग मिले उससे अपनी इच्छा पूर्ति कर लें। लेकिन ईश्वर की मंशा (योजना) मनुष्य के प्रति यह ज्ञात होती है कि वह परिवार बनाकर समाज की स्थापना करे और सामाजिक जीवन व्यतीत करे।
2. कौमार्य के पर्दे की समस्या पर चिन्तत करने से ईश्वर की यह मंशा जान पड़ती है कि स्त्री रास्ते में पड़ी हुई कोई वस्तु की तरह नहीं है जिससे कोई भी लाभान्वित होता रहे, और न यह दुकान व मकान की तरह किराए पर चलाए जाने के लिए पैदा की गई है। इसके विपरीत ज्ञात ऐसा होता है कि ईश्वर चाहता है कि उसे किसी एक ही व्यक्ति से जुड़ा एवं आरक्षित होना

चाहिए और वह भी उससे जो वफ़ादारी का वचन दे, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने की पूरी ज़िम्मेदारी ले तथा उसकी सुरक्षा करने के लिए सदैव तैयार रहे। फिर इससे यह भी ज्ञात होता है कि एक पुरुष की पूर्ण विश्वासपात्र बनने के लिए यह भी आवश्यक है कि पुरुष को इस बात पर पूर्ण विश्वास हो कि उससे पहले इस स्त्री ने किसी अन्य पुरुष से कोई सम्बन्ध नहीं रखा है। इसपर पूर्ण भरोसा किया जा सकता है। यह बेवफ़ा भी साबित नहीं होगी; अतः अपनी प्रत्येक वस्तु इसकी सुरक्षा में दी जा सकती है। फिर स्त्री को भी यह भरोसा रहे कि उसका पति उसके अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री से आँखें चार करने, अव्यावहारिक प्रेम और अवैध शारीरिक सम्बन्ध तो नहीं करेगा। यही परस्पर विश्वास और भरोसा है, जो एक परिवार में सुन्दर वातावरण उत्पन्न करता तथा उसे स्थिर जीवन से संलग्न करता है। इससे उसे स्थायित्व और निरन्तरता प्राप्त होती है। ऐसा परिवार ही आदर्श परिवार कहा जा सकता है। ऐसे ही परिवारों से मिलकर एक आदर्श समाज की स्थापना सम्भव है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि प्रकृति की योजना यह है कि मानवीय समाज की व्यवस्था ऐसे नियमों पर आधारित होना चाहिए जिससे स्त्री का सतीत्व सुरक्षित हो सके तथा वह कुदृष्टि के ताप एवं वासनात्मक शोषण की आग से सुरक्षित रखी जा सके।

3. बच्चे की इस स्थिति, उसकी इस मजबूरी व विवशता तथा हर समय सुरक्षा और निगरानी की आवश्यकता से यह बात अनिवार्य हो जाती है कि समाज का कोई एक व्यक्ति प्रतिक्षण उसके पास रहे, जो निरन्तर उसकी देखभाल करे, उसकी आवश्यकता पूर्ति का प्रबन्ध कर सके और उसकी शिक्षा-दीक्षा के लिए सदैव चिन्तित रहे। प्रश्न उत्पन्न होता है कि परिवार का ऐसा व्यक्ति कौन हो सकता है? स्पष्ट है कि इस कर्तव्य को ठीक ढंग से निभाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति वही हो सकता है जिसने उस जान को संसार में लाने के लिए अनगिनत

कष्ट एवं विपदाएँ उठाई हैं। अतः वह व्यक्ति सिर्फ़ माँ हो सकती है। एक ओर उसमें बच्चे के प्रति असाधारण-प्रेम एवं समर्पण का भाव होता है। फिर लगभग नौ मास तक अपने पेट के अन्दर अपने ख़ून से उसे पालती-पोसती रहती है और बच्चा जनने के जानलेवा कष्टों को दिलो-जान से सहती रहती है। इसके अतिरिक्त ईश्वर भी चूँकि यही चाहता है कि बच्चे की देख-रेख और सुरक्षा माँ के सुपुर्द होनी चाहिए इसलिए उसने माँ के सुपुर्द बच्चे के आहार का भण्डार भी कर दिया है।

सामाजिक जीवन के नियम

इस स्पष्टीकरण से सामाजिक जीवन के कुछ आधारभूत नियमों पर प्रकाश पड़ता है—

1. समाज स्थायी और सुदृढ़ परिवारों से बनना चाहिए अन्यथा उसे स्थायित्व प्राप्त नहीं होगा।
2. स्त्री एवं पुरुष के कार्य-क्षेत्र अलग-अलग होने चाहिएँ। स्त्री का कार्य-क्षेत्र घर के अन्दर तथा पुरुष का कार्य-क्षेत्र बाहर की दुनिया होनी चाहिए।
3. स्त्री को केवल एक ही पुरुष के अधीन होना चाहिए अन्यथा पारिवारिक जीवन की जड़ें हिल कर रह जाएँगी।
4. बच्चे की परवरिश, निगरानी और शिक्षा-दीक्षा माँ के ही अधिकार क्षेत्र में होनी चाहिए।
5. स्त्री को दूसरे पुरुषों की कुदृष्टियों से बचाने तथा उसके सतीत्व एवं सम्मान की सुरक्षा के उचित प्रबन्ध होने चाहिएँ ताकि उसकी वासनात्मक शोषणों की सारी सम्भावनाएँ समाप्त हो जाएँ। इस उद्देश्य-पूर्ति के लिए स्त्रियों-पुरुषों के स्वच्छन्द मेल-मिलाप पर प्रतिबन्ध होना चाहिए।

स्त्री के विषय में धारणाएँ और सामाजिकता

सामाजिक जीवन के ये वे मौलिक सिद्धान्त हैं, जो हमें ईश्वरीय तत्व-दर्शिता के विधान पर चिन्तन करने से ज्ञात होते हैं। वास्तविकता यह है कि सामाजिक जीवन के ढाँचे तथा नैतिक मूल्यों को निर्धारित

करने में इस समस्या को प्राथमिक महत्त्व प्राप्त है कि समाज में स्त्री के विषय में क्या धारणा है। इस धारणा के आधार पर समाज में औरत की स्थिति का निर्धारण होता है। इसी पर सामाजिक नियमों तथा सम्बन्धों की स्थिति निर्धारित होती है। उदाहरण स्वरूप देखिए, प्राचीन हिन्दु सभ्यता में यह धारणा मान्य थी कि औरत कामुकता के लिहाज़ से मर्द से आठ गुना अधिक शक्तिशाली होती है। वह भरोसेमन्द नहीं होती, बेवफ़ा और कम सूझ-बूझवाली होती है। इसका परिणाम यह हुआ कि उस युग में औरत के अनेक पति होते थे। उससे कोई राज़ की बात नहीं कही जाती थी। उसे राय देने योग्य भी नहीं समझा जाता था तथा उससे देवता की तरह पति की पूजा कराई जाती थी ताकि उसे हर स्तर पर अपनी तुच्छता एवं नीचता का आभास होता रहे। प्राचीन यहूदी धारणा में औरत को मर्दों की सारी मुसीबतों की जड़ कहा गया था। यहूदियों का विचार था कि हज़रत आदम *(अलैहि॰)* को स्वर्ग से वंचित करके संसार में सज़ा देने के लिए भेजने का कारण हज़रत हव्वा की नाफ़रमानी था। इसलिए वे स्त्री को पुरुष का शत्रु समझते थे। शायद इसी लिए औरत के लिए वूमैन (Woman) का शब्द बनाया गया है, जो शायद Woe और Man से मिलकर बना है, जिसका अर्थ "मर्दों की मुसीबत" है। उनके अनुसार स्त्री एक ऐसा अस्तित्व है जिसे पुरुष की दासता के लिए पैदा किया गया है। अतः उसके साथ दासियों जैसा व्यवहार करना चाहिए। उसे दबाकर रखा जाना तथा हज़रत हव्वा की कथित ग़लती की सज़ा सारी औरतों को दी जानी चाहिए।

यहूदियों की इस धारणा से जिस सामाजिक नैतिकता की उत्पत्ति हो सकती है उसे जानने के लिए प्राचीन व आधुनिक यहूदी समाज का अध्ययन करना चाहिए। आश्चर्य की बात यह हैं कि ईसाई समाज के बारे में विभिन्न दृष्टिकोणों से अधिकतर रिपोर्टें समाचार पत्रों की शोभा बनती रहती हैं। मगर अभी तक यहूदी समाज की वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में कोई रिपोर्ट देखने में नहीं आई। इसका कारण शायद यह हो कि संसार की मीडिया और सूचना-तंत्रों पर चूँकि यहूदी लॉबी का प्रभुत्व है, अतः वह अपने शत्रु नम्बर एक अर्थात् ईसाई समाज का विश्लेषण तो करते रहते हैं कि वे इस समाज को बरबाद करने में कहाँ तक सफल

हुए हैं, परन्तु अपने समाज के बारे में संसार के लोगों को यह समझाने में लगे हुए हैं कि उसमें तो कोई त्रुटि है ही नहीं। फिर ईसाई समाज में भी औरत के बारे में जो धारणाएँ मौजूद थीं, उन यहूदियों की धारणाओं का ही प्रारूप मालूम होती हैं। इसी कारण उनके यहाँ पवित्रता का मानदण्ड यह निर्धारित किया गया कि पुरुष का स्त्री से तथा स्त्री का पुरुष से कोई सम्बन्ध न रहे। शेष सभी बातों में ईसाई धारणाएँ वही हैं जो यहूदी समाज में प्रचलित हैं। यूरोप के वर्तमान सामाजिक-परिवर्तन में औरत के विषय में इस अपमानयुक्त धारणा की प्रतिक्रिया का प्रभाव भी जान पड़ता है।

अब इस्लाम को लीजिए। इस्लाम आरम्भ ही से इस बात को स्वीकार करता है कि स्त्री और पुरुष दोनों मनुष्य हैं। अतः मानव होने की हैसियत से दोनों के अधिकार समान हैं। स्त्री चूँकि पुरुष की तुलना में दुर्बल एवं कोमल बनाई गई है, सन्तानोत्पत्ति करने तथा उनका पालन-पोषण करने की ज़िम्मेदारी उसको सौंपी गई है, अतः इस दायित्व को एकाग्रता के साथ पूरा करने के लिए घर को उसका कार्यक्षेत्र बनाया गया है। निकाह (विवाह) के द्वारा एक स्त्री को एक ही पुरुष से दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए। स्त्री को आर्थिक कर्तव्यों से निश्चिन्त रहना चाहिए। पुरुष को अति परिश्रम करके धन अर्जन करना चाहिए, साथ ही पुरुष को अपने बीवी-बच्चों की देखभाल तथा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए। स्त्री को अन्य पुरुषों की कुदृष्टियों तथा विभिन्न प्रकार के घातक एवं आक्रामक शोषण से सुरक्षित रखने के लिए पर्दे का प्रबन्ध होना चाहिए।

अतः सारांश यह कि स्त्री के विषय में समाज का जो दृष्टिकोण होगा, सामाजिक स्वरूप और नैतिकता भी उसी के अनुरूप होगी।

प्रभाव एवं परिणाम

समानता की अनुचित व्यवस्था

आधुनिक सिद्धान्तों ने मौलिक रूप से स्त्री और पुरुष को प्रत्येक दृष्टि से समान ठहरा दिया है तथा समानता को कार्य एवं कार्य-क्षेत्र तक विस्तारित कर दिया है। इसका परिणाम यह है कि स्त्री जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ-साथ भाग-दौड़ और संघर्ष में व्यस्त हो गई है। अर्थात् पश्चिमी संस्कृति ने स्त्री को स्त्री होने की स्थिति में तो कुछ नहीं दिया बल्कि उसका सब कुछ छीन लिया है। अलबत्ता उसे पुरुष मानकर जीवन-संघर्ष के क्षेत्र में खींच लिया है। परिणाम यह हुआ कि औरत होने की हैसियत से तो अति निर्दयतापूर्वक उसका लैंगिक शोषण हो रहा है और उसको पुरुष मानकर उसकी जीवन-सम्बन्धी अनिवार्य आवश्यकताओं की उपलब्धि से अपने आपको निश्चिन्त बना लिया है।

दार्शनिक छल का परिणाम

इस दार्शनिक छल का परिणाम यह हुआ कि—

(1) ईश्वर एवं धर्म का इनकार

डार्विन, मार्क्स तथा फ्रायड के दर्शनों ने लोगों के दिलों से ईश्वर की कल्पना को समाप्त करके उन्हें निर्भय बना दिया, जिससे वे बे लगाम (निरंकुश) इच्छाओं के दास बनकर रह गए। ईश-भय समाप्त होने के कारण धर्म का महत्त्व तथा उससे उत्पन्न होनेवाला सामाजिक ढाँचा भी विनाश के घाट उतरकर रह गया। इन दर्शनों ने ईश्वर के स्थान पर भौतिकता को लाकर बिठाया और भौतिकता की गुलामी जीवन का व्यावहारिक चलन हो गया। अब जीवन का कोई महान उद्देश्य शेष नहीं रह गया। अपितु मानव जीवन का उद्देश्य अधिक से अधिक भौतिक संसाधन अर्जित करना मात्र रह गया, चाहे वह किसी भी प्रकार किया जाए।

(2) नैतिकता की व्यावहारिक परिकल्पना

धर्म की पकड़ कमज़ोर पड़ जाने बल्कि समाप्त हो जाने के फलस्वरूप नैतिक मानदण्ड भी चूर-चूर होकर रह गए। नैतिक मानदण्ड चूँकि धर्म के आधार पर स्थापित होते हैं, इसलिए धर्म से विमुखता और दूरी ने नैतिक स्तर को भी पतन की स्थिति में लाकर डाल दिया। इसके बाद नैतिकता के दर्शन का प्रचार-प्रसार आरम्भ किया गया तथा उसका मानदण्ड व्यावहारिकता को ठहराया गया। अर्थात् जो वस्तु उपयोगी है वह नैतिक है तथा जो वस्तु हानिकारक है वह अनैतिक है। इस प्रकार व्यक्ति, समाज और शासन-तन्त्र की स्वार्थपरता, भोगविलासिता, इच्छा की दास्ता तथा अवसरवादिता जैसी घृणित विशेषताओं पर नैतिक मूल्यों का लेबल लगा दिया गया जिसके परिणामस्वरूप मानव पतन के गर्त में गिरता चला गया।

(3) पुरुषों की बेरोज़गारी

प्राकृतिक रूप से स्त्री पुरुष की सबसे बड़ी कमज़ोरी है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् तथा दोनों विश्वयुद्धों के परिणामस्वरूप असंख्य औरतें दो जून की रोटी के लिए मुहताज हो गई थीं। इसलिए उन्हें नौकरियों में प्रमुखता दी जाने लगी। परिणाम यह निकला कि अधिकांश नौकरियों में औरतों ही को रखा जाने लगा तथा जितनी औरतें नौकरी पाती गईं उतने ही पुरुष बेकार होते चले गए। इसी कारण औरतों की नौकरी पुरुषों के लिए असीम समस्याओं एवं विपत्तियों का कारण साबित हुई। इसके परिणामस्वरूप एक ओर स्त्री पुरुषों के अधिकार से निकलकर पूर्णतः स्वतन्त्र हो गई तो दूसरी ओर वे बेकार पुरुष को गिरी हुई नज़रों से देखने लगी और अन्य कार्यरत पुरुषों की ओर आकर्षित होने लगी। इस प्रकार भोग-विलासिता का पूर्ण वातावरण बनता चला गया। स्पष्ट है ऐसे माहौल में रहनेवाली औरत बच्चे पैदा करने तथा उनके लालन-पालन की 'मुसीबत' क्योंकर मोल लेगी। अतः इससे बर्थ-कंट्रोल की समस्या का भी समाधान होने लगा तथा खुली भोग-विलासिता का वातावरण बनाने में भी सहयोग मिलने लगा।

(4) नारी स्वतन्त्रता का आन्दोलन

इन दार्शनिक विचारों के परिणामस्वरूप नारी स्वतन्त्रता के नाम से महिलाओं द्वारा ही एक आन्दोलन चलाया गया। इस आन्दोलन का नाम तो अति सुन्दर एवं मनमोहक है, परन्तु वास्तव में यह स्त्रियों में अपने पतियों के विरुद्ध विद्रोह भड़काने का कार्यक्रम है ताकि प्रत्येक परिवार युद्ध क्षेत्र बन जाए। स्त्रियाँ पतियों के विरुद्ध बग़ावत कर दें। परिणामतः स्त्रियाँ अपने पुरुष मित्रों के साथ क्लबों में रातें बिताएँ तथा पुरुष अपनी महिला मित्रों के साथ विलासितापूर्ण रातें व्यतीत करते रहें। अन्ततः इस पारिवारिक संघर्ष के फलस्वरूप परिवार टूट जाए और तलाक़ की नौबत आ जाए। अतएव अमेरिका के बारे में रिपोर्ट है कि वहाँ पचपन प्रतिशत 55% शादियों का परिणाम तलाक़ होता है।

(सहरोज़ा दावत, 1/12/89)

जब इस प्रकार परिवार बिखरते रहेंगे तथा स्त्री-पुरुष परस्पर झगड़ते रहेंगे तो बच्चे कौन पैदा करेगा?

(5) व्यभिचार की अधिकता तथा कुँवारी माएँ

इन पारिवारिक झगड़ों तथा तलाक़ की अधिकता के फलस्वरूप नवयुवकों में विवाह के प्रति घृणा पैदा हो चुकी है। जब स्त्री और पुरुष दोनों कमानेवाले हों और बच्चे पैदा करना न हो तो फिर शादी के झंझट में पड़ने की क्या ज़रूरत है? केवल वासनापूर्ति के लिए इस उलझन को कौन और क्यों मोल ले, जबकि प्रत्येक इच्छित वस्तु सरलता से उपलब्ध हो। अतः वाशिंगटन टाइम्स की वर्तमान सर्वे रिपोर्ट के अनुसार–

> ''शारीरिक सम्बन्ध बनाने का अनुभव रखनेवाली 15 से 19 वर्ष की उम्र की कुआँरी लड़कियों की संख्या सन् 1971 ई॰ में 19 प्रतिशत हो गई थी। सन् 1982 में यह संख्या बढ़कर 42 प्रतिशत हो गई तथा वर्तमान सर्वे के अनुसार अमेरिका में प्रतिवर्ष दस लाख कुँआरी लड़कियाँ गर्भवती हो जाती हैं।''
>
> (सहरोज़ा दावत : 19-7-92)

अमेरिका ही से सम्बन्धित एक रिपोर्ट है :

''बीस वर्ष की उम्र तक 66 प्रतिशत लड़कियाँ अपना कौमार्य

खो चुकी होती हैं।"

एक अन्य रिपोर्ट में कहा गया है :

"एक अमेरिकी संस्था के सर्वे के अनुसार विवाह किए बिना पति-पत्नी की भाँति जीवन व्यतीत करने के रुझान ने अमेरिकी समाज में एक नई समस्या खड़ी कर दी है, और यह समस्या उन माताओं के बारे में है जिनको उनके मित्र लड़के (Boy Friends) छोड़कर भाग गए तथा जो शादी किए बिना माँ बन गईं।"

अमेरिका में इस समय बाप के बिना जीवन व्यतीत करनेवाले बच्चों का औसत 36% है जबकि सन् 1964 ई॰ में ऐसे बच्चों का औसत 17% था। (सहरोज़ा दावत : 19-6-1995)

कनाडा के बारे में एक रिपोर्ट है :

"कनाडा में अविवाहित जोड़ों की निरन्तर वृद्धि हो रही है। एक सर्वे के अनुसार पिछले बीस वर्षों में बीस वर्ष से कम उम्र की विवाहित लड़कियों की संख्या में तेज़ी से कमी आ रही है। पहले इसका अनुपात 30% था लेकिन अब केवल 4% रह गया है। विवाहित पुरुषों का अनुपात भी 8% रह गया है। कनाडा में विवाह का प्रचलन कम से कम होता जा रहा है तथा 50% बच्चे अवैध पैदा हो रहे हैं।"

(सहरोज़ा दावत : एक जुलाई 1995)

(6) औलाद से नफ़रत

स्वच्छन्द शारीरिक सम्बन्ध एवं वासनात्मक अराजकता ने महिलाओं को मातृत्व-भाव से बिल्कुल वंचित कर दिया है। अपने बच्चे के लिए माँ की ममता को आदर्श प्रेम कहा जाता है। किन्तु यूरोप के इस आधुनिक आन्दोलन तथा इस पथभ्रष्ट समाज ने स्त्री के ममत्व-चेतना को ही विनाश के घाट उतार दिया है।

ब्रिटेन सम्बन्धित एक सूचना है—

"सन्डे टाइम्स के अनुसार ब्रिटेन में औरतें बच्चों को अपनी उन्नति, कॅरियर तथा मौज-मस्ती की राह में रुकावट समझने लगी हैं और इस प्रकार की स्त्रियों की अधिकता होती जा रही है जो ऑपरेशन कराकर सन्तानोत्पत्ति की क्षमता ही समाप्त

कर रही हैं। परिवार बिखरता जा रहा है तथा प्रति परिवार बच्चों की संख्या 2.6 से घट कर 1.5 रह गई है।"

(सहरोज़ा दावत : 22 जून 1995)

अमेरिका में एक बीस वर्षीय स्त्री अपने चार पुरुष मित्रों के साथ एक पार्टी में गई और अपने दो छोटे बच्चों को कार में सीट से बाँधकर छोड़ गई। पार्टी में रात-भर शराब में धुत अपने दोस्तों के साथ अय्याशी करती रही, दूसरे दिन एक बजे के बाद कार के पास आई तो दोनों बच्चे मर चुके थे।

दक्षिणी कैरोलिना में एक महिला ने अपने दो बच्चों को झील में डुबो दिया। एक चौबीस वर्षीय स्त्री ने अपनी सात वर्षीय पुत्री को मार-मारकर मौत के घाट उतार दिया।

(सहरोज़ा दावत : 19, जून 1995)

ये तथा इस प्रकार की अनेक घटनाएँ समाचार-पत्रों में आती रहती हैं जिससे पाश्चात्य समाज की गिरावट की सीमा पर रौशनी पड़ती है।

(7) वेश्यावृत्ति

यूँ तो आजकल वेश्यावृत्ति के अनेक सांस्कृतिक रूप यूरोपीय समाज में पैदा हो गए हैं, जिनके असंख्य नए-नए नाम रखकर अति उन्नत समाज के ताज में सुसज्जित किया जाता रहता है और जिनकी संख्या का निर्धारण करना असम्भव हो गया है। अलबत्ता आश्चर्यजनक बात यह है कि हॉलैन्ड की सरकार ने वेश्यावृत्ति को व्यापारिक दर्जा दे दिया है। अतः अब औरतें वेश्यावृत्ति से जो पैसा कमाएँगी उसमें से सरकार उनसे टैक्स के नाम पर पैसा वुसूल करेगी। अवलोकन करें—

"एसोसिएटेड प्रेस के अनुसार हॉलैण्ड की राजधानी एम्सटरडम की ख़बर है कि हॉलैण्ड में वेश्यावृत्ति को वैध ही नहीं अपितु उसे एक उद्योग का रूप दे दिया गया है तथा पर्यटन विभाग के अन्तर्गत स्थापित इस 'सेक्स उद्योग' से सरकार को प्रतिवर्ष 83 करोड़ डालर का लाभ होगा।"

(सहरोज़ा दावत : 4 जुलाई 1992)

(8) कलीसा की विवशता

यूरोपीय समाज में अमर्यादित काम-क्रीड़ा, निरंकुश भोग-विलासिता तथा यौन अराजकता की यह बाढ़ इतनी तीव्र गति से आई कि कलीसा की सारी नैतिक मर्यादाएँ बहती चली गईं तथा वह इस बाढ़ को रोकने में पूर्णतः असफल हो गया। उसकी विवशता का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि अब स्वयं कलीसा को इन स्थितियों से समझौता करना पड़ गया और समझौता भी कितना गिरकर करना पड़ा इसका अवलोकन कीजिए—

> "(ब्रिटेन में) पिछले दिनों देश के सरकारी कलीसा चर्च आफ़ इंगलैंड ने यह आदेश जारी किया था कि वैवाहिक सम्बन्धों के बिना शारीरिक सम्बन्ध अब पाप की सीमा के अन्तर्गत नहीं आते।" (सहरोज़ा दावत : 13 जुलाई 1995)

उन्मादपूर्ण यौन उच्छृंखलता की इस प्रचण्ड बाढ़ से चर्च की दीवारें भी सुरक्षित नहीं रह सकीं। यह बाढ़ उन्हें भी तोड़कर चर्च के अन्दर घुस गई तथा वहाँ क्या-क्या रंग दिखलाए समाचार पत्र पढ़नेवाले लोग इससे भलीभाँति परिचित हैं! परिणाम यह हुआ कि—

> "लन्दन से एक ख़बर आई है कि पिछले कुछ वर्षों के अन्दर ब्रिटेन के लगभग एक लाख पादरी प्रेम रोग में लिप्त होकर चर्च छोड़ चुके हैं तथा संयास जीवन का परित्याग करके गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं।"
>
> (सहरोज़ा दावत : 19 जुलाई 1992)

पादरियों की यह संख्या संसार भर के पादरियों की संख्या की एक चौथाई के बराबर है। कलीसा से जो आन्दोलन चला था, परिणामतः स्वयं कलीसा को ही वहाँ ले गया। अब स्थिति यह है कि यूरोप में अधिकांश कलीसा वीरान पड़े हुए हैं और विवश होकर उन्हें दूसरों के हाथों बेचना पड़ रहा है।

(9) समलैंगिकता की महामारी

मानवीय प्रकृति यह है कि जब कोई वस्तु अति सुलभ हो जाए तथा प्रचुरता से प्राप्त होने लगे तो फिर उसकी निगाह में उस वस्तु की

क़ीमत कम से कम हो जाती है। फिर वह अन्य उपायों से अपनी आवश्यकता-पूर्ति करने का प्रयत्न करने लगता है। यूरोप में उन्मादपूर्ण यौन उच्छृंखलता और यौन अराजकता के फलस्वरूप औरत की उपलब्धता इतनी सरल हो गई है कि पुरुषों की दृष्टि में उनका महत्त्व एवं मूल्य लगभग समाप्त हो गया है। अतएव अब वहाँ के पुरुषों ने तथा साथ ही साथ स्त्रियों ने भी समलैंगिक वासना-पूर्ति के नए उपाय अपनाने आरम्भ कर दिए हैं। निर्लज्जता की चरम सीमा यहाँ तक पहुँच गई कि अब वहाँ के स्त्री-पुरुष अपने इन कुकर्मों को सार्वजनिक रूप से प्रकट करने में शर्म भी महसूस नहीं करते, बल्कि परिवार को सीमित करने के लिए इस क्रिया को प्रभावपूर्ण तथा सर्वथा उपयोगी ठहराते हैं। अब यूरोपीय समाज उन लोगों को बुरा भी नहीं समझता, बल्कि उन्हें प्रतिष्ठित मानता है तथा अपना नेतृत्व तथा नायिकता का पद तक भी उनको सौंप देता है। यह महामारी इस सीमा तक फैल गई है कि सेना भी इससे सुरक्षित नहीं रह गई। अब कलीसा ने भी इस कर्म से समझौता कर लिया है। इस सिलसिले में कुछ रिपोर्टों का अवलोकन कीजिए–

> "24 जून (1995) को फ्राँस के समलैंगिकतावादियों ने अपनी वार्षिक परेड की। उसमें साठ हज़ार स्त्री-पुरुषों ने भाग लिया........... उस दिन यूरोप के अन्य देशों में भी परेड निकाली गईं।" (सः रोज़ा दावत, एक जुलाई,1995 ई॰)
>
> "राष्ट्रपति क्लिंटन ने समलैंगिकतावादी स्त्री-पुरुषों पर से आंशिक प्रतिबन्ध समाप्त कर दिया है।"
>
> (बी॰ बी॰ सी॰ लन्दन, 20 जुलाई 1993 ई॰)

बेहयाई के ये दृश्य ही क्या कम थे किन्तु औरतें पुरुषों को भी बहुत पीछे छोड़ गईं। अतः कुछ सूचनाएँ निम्न हैं–

> "25 जून को न्यूयार्क में समलैंगिकतावादी लोगों ने अपनी वार्षिक परेड, आयोजित की। परेड में सम्मिलित एक औरत ने अपने शरीर का ऊपरी भाग नग्न करके परेड देखनेवालों की ओर कर दिया।"

एक अन्य सूचना है :

"एक दूसरी समलैंगिकतावादी औरत, लन्दन में लार्ड्स के मैदान में, वेस्ट इन्डीज़ और इंगलैण्ड के बीच टेस्ट मैच के दौरान बिल्कुल नग्न होकर दौड़ती हुई मैदान में घुस गई।"

(सहरोज़ा दावत, एक जुलाई, 1995)

एक और समाचार का अवलोकन कीजिए :

"चुनाव में सफलता प्राप्त करनेवाले समलैंगिकतावादी अफ़सरों से राष्ट्रपति क्लिंटन ने लिखित रूप से क्षमा याचना कर ली है। क्योंकि जब ये लोग राष्ट्रपति क्लिंटन से मिलने आए तो उनके स्टाफ़ के लोगों ने चमड़े के दस्ताने पहनकर उनका स्वागत किया था।" (सहरोज़ा दावत, 26 जून 1995 ई॰)

यह दशा हो गई है यूरोप के समाज की तथा इतनी अधिक बेहयाई और ढिठाई पैदा हो गई है वहाँ की औरतों में!

(10) निर्लज्जता की कुछ घटनाएँ

समलैंगिकता की इस महामारी ने पश्चिमी देशों में औरत का मूल्य एवं महत्त्व इतना गिरा दिया है कि अब औरत उसे पाने के लिए सीना खोलकर राज-मार्गों पर चलने-फिरने के लिए विवश हो गई है। अमेरिकी क़ानून के अनुसार औरतों पर यह पाबन्दी है कि वे आम राज-मार्गों पर सीना खोलकर चल-फिर नहीं सकतीं। यह पुलिस हस्तक्षेप के अन्तर्गत आनेवाला दण्डनीय अपराध है। पुलिस ने विश्वविद्यालय की एक बीस वर्षीय छात्रा तथा एक अन्य औरत को इस जुर्म में गिरफ़्तार करके अदालत में पेश कर दिया। अदालत ने दोनों को सज़ाएँ दीं। उन्होंने इस सज़ा के विरुद्ध अपील दायर की, जिसे अस्वीकार कर दिया गया। वहाँ की औरतों की नज़र में अदालत का यह निर्णय स्त्री-पुरुष समानता के मौलिक अधिकार के प्रतिकूल था। उनकी माँग थी कि जब पुरुष सीना खोलकर चल-फिर सकते हैं तो फिर उस अधिकार से स्त्रियों को किस आधार पर वंचित रखा जा रहा है। अतएव अदालत के इस निर्णय के विरुद्ध नारी अधिकार की संस्थाओं ने विरोध प्रदर्शन करने का सिलसिला आरम्भ कर दिया। इस प्रदर्शन की स्थिति क्या थी, इसका अवलोकन कीजिए—

"ओटावा से एजेंसी ने ख़बर दी है कि (22 जुलाई, 1992 ई॰) पिछले सप्ताह कनाडा के हर क्षेत्र में सीना खोलकर स्त्रियों के गश्त लगाने की एक लहर आ गई है...... यह नग्नता प्रदर्शन केवल पुरुषों की चिढ़ में तथा स्त्री-पुरुषों की पूर्ण समानता की प्राप्ति के हठ के कारण है।"

(सहरोज़ा दावत : सितम्बर, 1992 ई॰)

"एक अन्य सूचना के अनुसार ब्रिटेन के एक अभिनेता ह्यूग्रान्ट ने सड़क पर एक वेश्या के साथ संभोग किया, जिसपर किसी ने कोई आपत्ति नहीं जताई।"

(सहरोज़ा दावत : 13 जुलाई, 1995 ई॰)

यह है वह नैतिक पतन जहाँ तक पश्चिमी समाज गिर चुका है। स्पष्ट है कि इस करनी का फल भी उसको भुगतना पड़ेगा।

(11) यौन रोग

इस पथभ्रष्टता, निरंकुश काम-लोलुपता, समलैंगिकता को अभिशाप तथा स्वच्छन्द शारीरिक अवैध सम्बन्धों ने पश्चिमी समाज को खोखला कर दिया है। अतः वह अनगिनत यौन रोगों का घर बन गया है। दुनिया अभी तक तपेदिक एवं कैंसर जैसे रोगों का इलाज नहीं खोज पाई थी कि अब इस यौन पथभ्रष्टता ने एक और नए यौन रोग को जन्म दे दिया है, जिसे एड्स के नाम से जाना जाता है। इस रोग की गम्भीरता की दशा यह है कि अमेरिका में प्रति दस मिनट में एड्स रोग से ग्रसित एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

(बी॰ बी॰ सी॰ लन्दन, एक दिसम्बर 1991 ई॰)

एक और देश ब्राज़ील के बारे में एक रिपोर्ट में 1991 ई॰ में ही यह आशंका व्यक्त की गई थी कि 2000 ई॰ तक केवल ब्राज़ील में एड्स के कारण अस्सी लाख लोगों की मृत्यु हो सकती है। यही दशा यूरोप के अन्य देशों की भी होकर रह गई है।

इस प्रकार मौत के घाट उतरते रहने के बाद भी यूरोप अपनी दीर्घकालीन मक्कारी व धोखेबाज़ी की चालों से रुकने के लिए तैयार नहीं है। अतः इन मामलों में भी जब इस समाज की रिपोर्टें आती हैं तो तुरन्त एशिया के देशों के बारे में काल्पनिक आँकड़ों को बयान करके

उन्हें अपनी समस्याओं में उलझा देते हैं ताकि ये देश इस दशा के बाद भी उनका अनुकरण करते रहें तथा अपने समाजों को भी उस नैतिक पतन की खाई में धकेल दें, जिसमें यूरोप के समाज गिर चुके हैं।

यूरोप में इस आन्दोलन का आरम्भ जनसंख्या-नियन्त्रण के सुन्दर नाम से हुआ था ताकि देश में आर्थिक सम्पन्नता की चहल-पहल हो जाए। किन्तु यह आन्दोलन उन्मादपूर्ण यौन उच्छृंखलता, निरंकुश काम लिप्तता, परिवारों की तबाही, पतियों के विरुद्ध विद्रोह, यौन अराजकता, स्त्रियों का नग्न घूमना, सार्वजनिक स्थलों पर अवैध सम्भोग की मंज़िलों से गुज़रती हुई समलैंगिकता तथा एड्स की मंज़िल तक पहुँच चुका है, जिसके पश्चात् केवल मृत्यु मुँह खोले खड़ी दिखाई पड़ रही है।

क्या एशिया के देशों के नायक अपने देशों को भी उसी परिणाम तक पहुँचाने के लिए तैयार हैं, और अगर नहीं तो फिर पाश्चात्य देशों का यह अन्धानुकरण आख़िर किस लिए?

(4)

बर्थ-कंट्रोल का भयंकर परिणाम

पिछले पृष्ठों में यूरोप की दशाओं का जो संक्षिप्त चित्रण किया गया है उससे यह बात सरलता से समझ में आ जाती है कि इन आधुनिक यहूदी दर्शनों ने पश्चिमी देश के लोगों को कितना अधिक पतन-ग्रस्त कर दिया है, तथा उस पतन तक पहुँचाने के लिए उसे कितना भारी मूल्य चुकाना पड़ा है।

विश्व की वास्तविकता से अनभिज्ञता

इन दर्शनों ने मनुष्य को ईश-कल्पना ही से वंचित कर दिया है। यद्यपि ईश-धारणा तथा ईश्वर के अस्तित्त्व पर पूर्ण विश्वास मानव-मन में एक महानतम, जीवन्त निरीक्षक व संरक्षक तथा मनुष्य के लाभ-हानि का अधिकार रखनेवाली हस्ती का भय बिठाकर उसे उपयुक्त एवं लाभदायक मार्ग पर चलने की प्रेरणा तथा उत्साह प्रदान करता है। ईश परिकल्पना से वंचित मनुष्य बेलगाम घोड़े की भाँति हो जाता है। वह आत्म-संयम एवं कर्तव्य-परायणता की भावना से वंचित हो जाता है। इन दर्शनों की दूसरी मार धर्म पर पड़ी, ज़िसके कारण मनुष्य अपने जीवन के महान लक्ष्य तथा उसकी प्राप्ति के लिए प्रयुक्त होनेवाले संसाधनों की पवित्रता से वंचित हो गया। ईश-भय एवं धर्म-परायणता के फलस्वरूप नैतिकता के वे उच्च, अडिग और स्थायी मूल्य अस्तित्व में आते हैं, जिनको अंगीकार करने से मानव प्रतिष्ठा अपनी स्वाभाविक महानताओं के उच्च शिखर तक पहुँच सकता है। इन तीनों चीज़ों से वंचित हो जाने के पश्चात् मनुष्य के पास पेट एवं काम-वासना की आवश्यकताओं के अतिरिक्त बचता ही क्या है। अतएव इन महानतम नैतिक मूल्यों से वंचित हो जाने के पश्चात मनुष्य केवल वासना एवं उदरपूर्ति का अचेतन पुजारी ही शेष रह जाता है। ये दोनों चीज़ें मनुष्य को न केवल मानवीय महानता की बुलन्दियों से उतारकर पशु स्तर पर ले आती हैं, बल्कि वह पशुओं के स्तर से भी निम्न होकर पतितता की गहरी खाई

की निचली सतह तक गिर जाता है। इन बहुमूल्य उपहारों से वंचित होकर पश्चिमी मनुष्य उस खड्ड में गिर चुका है जहाँ पहुँचकर समलैंगिकता गौरवमय चीज़ बन जाती है तथा सार्वजनिक राज-मार्गों पर सीना खोलने पर भी एक महिला गर्व कर सकती है।

निन्दनीय गुण

स्वार्थपरता, अर्थलोलुपता और अवसरवादिता जैसे अवगुणों को मानव इतिहास में सदैव निन्दनीय माना गया है और नैतिक दुर्गुणों से मनुष्य को बचाने एवं पवित्र रखने के लिए धर्म ने नैतिक मूल्य निर्धारित किए हैं। मगर नैतिकता की उपयोगितावादी कल्पना ने इन निन्दनीय गुणों को भी भ्रमित दर्शनों के सहारे प्रशंसनीय ठहराकर लज्जाजनक होने के बजाए गौरवमय बना दिया है। मानो इन दर्शनों ने नैतिक मूल्यों को भी सिर के बल खड़ा कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि औरतें भीं अपनी सन्तान से घृणा करने लगीं तथा उन्हें स्वार्थी व बे लगाम अय्याशी के मार्ग की सबसे बड़ी रुकावट मानने लगीं। मनुष्य प्रेम-मन्दिर में हर समय नई मूर्ति की पूजा करने के लिए तत्पर रहने लगा। इस प्रकार वह स्वच्छन्द व्यभिचारिक तथा यौन अराजकता की नीचता तक पहुँच गया।

स्वतन्त्रता की ग़लत धारणा

स्वतन्त्रता शब्द अति सुन्दर एवं मनभावन है। लेकिन जिस संसार में हम रहते हैं उसकी बनावट ऐसी है कि उसमें सार्वभौम स्वतंन्त्रता की कोई कल्पना नहीं पाई जाती। यहाँ पर स्वतन्त्रता असंख्य सीमाओं व बन्धनों से प्रतिबन्धित है। यदि इन सीमाओं व बन्धनों का ध्यान न रखा जाए तो फिर यह स्वतन्त्रता नहीं रहती बल्कि उच्छृंखलता एवं निरंकुशता बन जाती है। इन आधुनिक दर्शनों ने स्वतन्त्रता के उच्च उद्घोषों की गूँज से जन-साधारण को मन्त्रमुग्ध करके उन सारी सीमाओं को तोड़ डाला जो स्वतन्त्रता को स्वतन्त्रता बनाए रखने के लिए अति आवश्यक थीं। परिणाम यह निकला कि स्वतन्त्रता की इस निरंकुश परिकल्पना ने सबसे अधिक बिगाड़ औरतों में उत्पन्न किया और वे इस हद तक पहुँच गईं कि स्वतन्त्रता के नशे में स्वच्छन्द भोगविलास एवं व्यभिचार में

लिप्त हो गईं तथा नित-नए पुरुष बदलने लगीं, जिसने पश्चिमी समाज में पारिवारिक व्यवस्था के ताने-बाने बिखेरकर रख दिए। परिणामतः आज पश्चिमी समाज जीवन-मृत्यु के संघर्ष की सीमा पर पहुँच चुका है।

समानता की भ्रामक अवधारणा

मनुष्यों के बीच असमानता मानवीय गरिमा का अनादर है। किन्तु समानता की वह अवधारणा जो पाश्चात्य चिन्तकों द्वारा दी गई है, बड़ी ही भ्रामक है। स्त्री-पुरुष के मध्य समानता के नाम से उन लोगों की जो अवधारणा है उसका कोई अस्तित्व तो इस संसार में है नहीं जिसमें हम सब रहते हैं। हम तो यह दखते हैं कि समानता के नशे में न चन्द्रमा पृथ्वी का चक्कर लगाना बन्द करता है और न ही पृथ्वी सूरज का। न समानता के नशे में समुद्र अपने पानी को भाप बनने से रोकता है और न हवाएँ उस भाप के बोझ को उठाने से इनकार करती हैं। न धरती पानी को अपने अन्दर सोखने से रोकती है और न ही पौधों को सिर उठाने से मना करती है। विश्व पर समानता के ये चिन्तक एक दिन भी गाय के स्थान पर बैल का दूध दूहने के लिए नहीं बैठते हैं और न ही कभी बैल के साथ गाय को हल में जोतने की हिमाक़त करते हैं। समानता के नशे में स्वयं पुरुषों ने बच्चों को अपना दूध पिलाने का प्रयत्न कभी नहीं किया है और न ही इस ललक में कभी बच्चे को जन्म दिया है। अतः जब ये स्वयं वे काम नहीं कर सकते जिसे केवल औरत ही कर सकती है तो फिर औरत से उन कामों की अपेक्षा क्यों करते हैं जिसे केवल पुरुषों को करना चाहिए। समानता के ये प्रचारक बताएँ कि फिर वह कौन-सी चीज़ है जो उन्हें औरतों को पुरुषों के समकक्ष ठहरा देने के लिए विवश करती है, जबकि स्थिति यह है कि स्त्रियों की हड्डियाँ और पसलियाँ यहाँ तक कि उनके माँस के रेशे तथा मस्तिष्क के स्नायुतंत्र तक पुरुषों से भिन्न होते हैं। उसकी चाल-ढाल व उठना-बैठना, पसन्द-नापसन्द, प्राथमिकताएँ, आवाज़ तथा रख-रखाव हर चीज़ में वह पुरुष से भिन्न है। गर्भावस्था से ही लड़के एवं लड़की का सृजनात्मक अन्तर आरम्भ हो जाता है और जैसे-जैसे उम्र बढ़ती रहती है यह अन्तर स्पष्ट होता चला जाता है। यहाँ तक कि स्त्रियों के शरीर में कुछ ऐसे अंग होते हैं जिनसे पुरुष वंचित रहते हैं तथा पुरुषों के शरीर

में कुछ ऐसे अंग होते हैं जो स्त्रियों को नहीं दिए गए हैं। अंगों का यह अन्तर खुद उन दोनों के अस्तित्व की भिन्नता को अनिवार्य करता है। तथापि उनमें एक बात में समानता है और वह यह कि इन सारी विभिन्नताओं के बावजूद ये दोनों समान रूप से मानव हैं। इसलिए मानव-अधिकार के विषय में बराबर हैं। परन्तु कर्तव्यों के विषय में भिन्न हैं। इससे मालूम हुआ कि काम के क्षेत्र में समानता स्त्री पर अत्याचार है, परन्तु जीवन-सुख उसका अधिकार है। लेकिन पुरुष चूँकि जीवन-सुख उसको देना ही नहीं चाहता इसलिए काम की समानता उसपर थोप देता है। स्वयं ज़ीवन-सुख प्राप्त करने के लिए उसका निर्दयतापूर्ण शोषण करता है तथा इसके परिणाम की ज़िम्मेदारी उठाने के लिए तैयार नहीं है। यहाँ तक कि अपनी रोज़ी-रोटी का प्रबन्ध भी स्वयं स्त्री को ही करना पड़ता है। यह स्त्री पर घोर अत्याचार है। किन्तु प्रचार के जादू तथा दार्शनिक प्रमाणों के छल ने इस अत्याचार को भी 'समानता' स्वीकार करा लिया है।

विनाशकारी परिणाम

इन दूषित परिकल्पनाओं का परिणाम यह हुआ कि देश व समाज विनाश के द्वार पर पहुँच गया और—

(1) जन-साधारण की स्वार्थपरता ने यह रंग दिखाया कि उनकी नज़रों से राष्ट्रीय तथा सामाजिक हित ओझल हो गया और व्यक्तिगत स्वार्थों ने आधारभूत महत्व प्राप्त कर लिया।

(2) बच्चे कम पैदा होने से राष्ट्र की सामूहिक जन-संख्या कम से कम होती चली गई, जिसने राष्ट्र के सामूहिक अस्तित्व को ख़तरे में डाल दिया।

(3) आबादी में वृद्धों की संख्या अधिक हो गई तथा उनकी जगह पूर्ति करने के लिए देश में इतने नव-युवकों का उपलब्ध होना सम्भव नहीं रहा और न इन नव-युवकों के वृद्ध होने पर रिक्त स्थान भरने के लिए देश में इतने बच्चे लालन-पालन के लिए शेष रहे।

(4) वृद्ध लोगों की संख्या बढ़ जाने और कमानेवाले हाथ कम हो जाने के कारण राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था पर असहनीय भार पड़ने लगा, जिसने आर्थिक स्थिति पर बुरा प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया।

(5) साधारणतया समाज के उच्च वर्ग के लोगों में बच्चे कम ही पैदा होते हैं। लेकिन बर्थ-कंट्रोल के इस अभियान तथा भोग-विलास में लिप्त समाज में उनकी संख्या और भी कम हो गई जबकि परिश्रम करनेवाले वर्गों में अपेक्षाकृत अधिक बच्चे पैदा होते रहे। इस प्रकार शारीरिक श्रम करनेवाले वर्गों की संख्या बढ़ती रही, मेधावी एवं योजना बनानेवाले वर्ग में कमी होती चली गई।

(6) समाज में काम करनेवाले हाथों की कमी को पूरा करने और राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था को पतन से बचाए रखने के लिए इमीग्रेशन (बाहर से लोगों को बुलाने) का मार्ग अपनाना पड़ा, जिसके कारण देश में विदेशी प्रवासियों का ख़तरा बढ़ता चला जा रहा है। यदि उन्हें समान राजनीतिक अधिकार दिए जाते हैं तो स्थानीय आबादी पर शासन करने के अवसर खुले रूप में उन्हें प्राप्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में स्थानीय आबादी प्रजातन्त्र का लाभ उठाकर उनके अधीन बनकर रह जाती है।

भयंकर परिणाम

अब देखिए बर्थ-कंट्रोल के फलस्वरूप पश्चिमी देश किस दशा में पहुँच गए हैं।

ब्रिटेन

ब्रिटेन के विषय में रिपोर्ट है—

"वहाँ परिवार बिखरता जा रहा है तथा प्रतिघर बच्चों की संख्या 2.6 से घटकर 1.5 रह गई है। अनुमान है कि वहाँ पन्द्रह वर्षों में वृद्धों की संख्या नवयुवकों से अधिक हो जाएगी।" (संडे टाइम्स से उद्धृत दावत 22 जून 1995)

यह वह ख़तरे की घंटी थी जो ब्रिटेन में सुनाई दे रही थी। ब्रिटेन में जनसंख्या बढ़ाने की प्रवृत्ति को बड़े पैमाने पर उत्साहित किया जा रहा है। अतः यदि कहीं इसका थोड़ा-सा रुझान भी दिखाई देने लगता है तो प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है। अवलोकन करें—

"अब पहले की अपेक्षा बच्चों की पैदाइश तथा नस्ल में वृद्धि को सामाजिक एवं राष्ट्रीय आवश्यकता समझा जाने लगा।

सन् 1960 ई॰ की दहाई की तुलना में बच्चों की पैदाइश में सन् 1980 ई॰ की दहाई में चौदह प्रतिशत की वृद्धि हुई है।"

(सहरोज़ा दावत, 16 जुलाई 1987)

लेकिन ब्रिटेन में यह रुझान बाक़ी नहीं रह सका तथा बच्चों की पैदावार फिर से कम होने लगी, जिसका अनुमान पिछली रिपोर्ट से होता है, जो इसके बाद प्रकाशित की गई है। इन दोनों रिपोर्टों से यह बात तो स्पष्ट हो ही जाती है कि ब्रिटेन इस समय जन-संख्या वृद्धि करने का कितना अधिक इच्छुक है ताकि वह उस परिणाम से पीड़ित न हो सके, जिसको कल्पना चक्षु से देखा जा सकता है।

अमेरिका

अमेरिका की दशा ब्रिटेन से भी अधिक ख़राब होकर रह गई है। इस देश में गर्भपात कराना क़ानूनी अपराध था, लेकिन सन् 1973 ई॰ में अमेरिकी शासन ने लोकमत के दबाव के सामने घुटने टेक दिए। अतः गर्भपात पर से क़ानूनी पाबन्दी हटा दी गई। क़ानूनी वैधता के पश्चात् अमेरिका में असंख्य औरतों के गर्भपात कराने का दौर आरम्भ हो गया और अस्पतालों में अनगिनत मामले गर्भपात के आने लगे।

ऐसा लगता है कि पश्चिमी देशों ने बर्थ-कंट्रोल के लिए जिन दवाओं और साधनों की खोज की थी, स्वयं पश्चिमवालों ने ही उन्हें अनुपयोगी एवं हानिकारक समझकर ठुकरा दिया है और बिना किसी रुकावट के सम्भोग करते हैं। इसी कारण औरतें बड़े पैमाने पर गर्भवती होती हैं। फलतः गर्भपात के अधिकतर मामले इन देशों के अस्पतालों में आते हैं।

अमेरिकी सरकार अपने देश में जनसंख्या वृद्धि की आवश्यकता को गम्भीरता से महसूस करती है। परन्तु जनमत के दबाव से भयभीत होकर गर्भपात पर रोक लगाने का साहस नहीं कर पाती। अतः अब उसने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए न्यायपालिका का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है। अतएव प्राथमिक रूप से अमेरिकी उच्चतम न्यायालय ने सरकारी अस्पतालों में गर्भपात पर पाबन्दी लगा दी है ताकि इस फैसले पर जन-प्रतिक्रिया को देखकर आगामी उपाय किए जा सकें, तथा गर्भपात पर पूर्णतः पाबन्दी लगा दी जाए। अतएव ख़बर है :

"अमेरिकी उच्चतम न्यायालय ने अपने एक फ़ैसले के द्वारा

सरकारी अस्पतालों में गर्भपात की सुविधाओं को समाप्त करने का आदेश दिया है। 2 जुलाई को वाशिंगटन में फ़ैसला जारी करते हुए मुख्य न्यायाधीश ने इस बारे में जो टिप्पणी की प्रकट है, उससे गर्भपात की क्रिया से अत्यन्त खिन्नता प्रकट होती है...... एक ओर अमेरिकी समाज के विभिन्न समूहों ने इसका स्वागत किया है तो दूसरी ओर फ़ैसले के विरुद्ध जन-प्रदर्शन भी किए जा रहे हैं। विरोधियों का कहना है कि यह 'मौलिक अधिकार का हनन' है।''

(सहरोज़ा दावत, 10 जुलाई 1989)

इस उद्धरण से अनुमान लगाया जा सकता है कि अमेरिकी सरकार जन-संख्या वृद्धि की आवश्यकता को कितनी तीव्रता से महसूस कर रही है। परन्तु वहाँ के जन समुदाय ने उसे इतना भयभीत कर रखा है कि वह स्वयं गर्भपात को अवैध क़रार देने का साहस नहीं करती। वह सुप्रीम कोर्ट को इस्तेमाल करती है। परन्तु जन-साधारण सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले को भी स्वीकार करने के लिए तैयार दिखाई नहीं देते।

अन्य यूरोपीय देश

अन्य यूरोपीय देशों में भी जन-संख्या की समस्या बहुत महत्वपूर्ण बन गई है। सभी जगह जन-संख्या बड़ी तेज़ी से घट रही है। गर्भपात की संख्या में तेज़ी से वृद्धि हो रही है। बूढ़ों की संख्या बढ़ रही है और आर्थिक व्यवस्था के पतन को सँभालने के लिए दूसरे देशों के लोगों पर भरोसा करना पड़ रहा है। एक रिपोर्ट के अनुसार :

''चेनेज़ के अनुसार बेल्जियम, इटली, फ्रांस और स्पेन जैसे बहुसंख्यक रोमन कैथोलिक देशों में वृद्ध लोगों का अनुपात अधिक है तथा जन्म की दर कम है। अतः वहाँ के सामाजिक कल्याण की व्यवस्था के लिए सस्ते श्रमिकों की आवश्यकता होती है और उसका आधारभूत साधन इमीग्रेशन है।''

(सहरोज़ा दावत 19 जून 1995 ई॰)

जब रूढ़िवादी रोमन कैथोलिक देशों की यह दशा है तो अनिवार्य रूप से प्रोटेस्टेंट देशों की वह स्थित होनी ही चाहिए, जिसमें अमेरिका और ब्रिटेन ग्रस्त हो चुके हैं।

सिंगापुर

सिंगापुर सरकार ने सन् 1947 ई॰ में 'दो काफ़ी हैं' का नारा दिया था। फिर सरकार ने स्त्रियों को बिना वेतन बच्चे जनने की छुट्टी, स्कूलों में प्रवेश में भेदभाव और बच्चा जनने की अत्यधिक फ़ीस लेनी आरम्भ कर दी। परिणाम यह हुआ कि इसके पश्चात कुछ वर्षों में ही आबादी कम होने लगी तथा 1986 ई॰ में सामान्य स्थिति की अपेक्षा चौदह हज़ार बच्चे कम पैदा हुए। फिर उस वर्ष बयालीस हज़ार बच्चों में से केवल बाइस हज़ार लड़के थे। यह संख्या प्रतिरक्षा की आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी अपूर्ण थी। सन् 1987 ई॰ में बीस हज़ार वृद्ध लोग देश में मौजूद थे तथा अनुमान है कि यह संख्या तीस साल में आठ लाख हो जाएगी।

सिंगापुर भी बर्थ-कंट्रोल के कारण यौन अराजकता में ग्रस्त हो चुका है। वहाँ भी बच्चे कम पैदा हो रहे हैं। आबादी में बूढ़े लोगों की वृद्धि हो रही है तथा काम करने योग्य लोगों की भारी कमी होती जा रही है। अतएव अब वहाँ की सरकार इस विषय में बहुत परेशान और चिंतित है। अब जन साधारण से अधिक से अधिक सन्तानोत्पत्ति करने का अनुरोध कर रही है। आम लोगों को सम्भावित संकटों से भयभीत करके आबादी बढ़ाने पर प्रोत्साहित कर रही है। प्रेस ट्रस्ट की एक ख़बर के अनुसार वहाँ के प्रथम उप-प्रधान मन्त्री ने आम लोगों को अधिक बच्चे पैदा करने के लिए प्रोत्साहित करने का प्रयत्न करते हुए यह कहा :

> Singapore– First Deputy Prime Minister Goh chok tong has expressed concern that as a nation, we are not producing enough babies to replace ourselves.' He warned, 'this would have grave consequences affecting all areas of their lives. The population will grow steadily older, and within a generation it will start to shrink. We will have smaller talanted pool, fewer national servicemen to defend Singapore, and fewer younger people with the vitality and energy to work and generate economic growth'. Mr. Goh underlined the need for producing more babies...... Families who can afford it should be encouraged to have more babies." (Indian Express 27/2/88)

> सिंगापुर– प्रथम उप-प्रधान मंत्री 'गोह चोक टोंग' ने शंका व्यक्त की है कि "एक राष्ट्र की हैसियत से अपने उत्तराधिकारी (भावी सन्तति) के लिए हम अपनी आवश्यकतानुसार सन्तान

उत्पन्न नहीं कर रहे हैं।" उन्होंने सचेत किया, "इसके गम्भीर परिणाम से जीवन के सभी भाग प्रभावित होंगे। जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्ध लोगों की बढ़ोत्तरी होगी तथा एक नस्ल के बीतते ही सीमित होकर रह जाएगी। सिंगापुर की प्रतिरक्षा के लिए हमारे पास कुशल राष्ट्र सेवकों एवं सैनिकों की कमी हो जाएगी। अतः काम करनेवाले तथा आर्थिक उत्थान करने के लिए शक्ति व उत्साह से परिपूर्ण नव युवकों का संकट पैदा हो जाएगा।" श्री गोह ने अधिक बच्चे पैदा करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया...... "जो परिवार इसकी शक्ति रखते हैं, उन्हें अधिक बच्चे पैदा करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।" (इण्डियन एक्सप्रेस, 27-2-88)

सिंगापुर में जन-संख्या की समस्या ने स्थानीय शासन को बहुत परेशान कर रखा है। ऊपर बयान की हुई अन्यायपूर्ण नीतियों के फलस्वरूप जनता ने प्रबल रूप से बर्थ-कंट्रोल को अपनाया। सरकार ने भी गर्भपात को प्रोत्साहित करने का मार्ग अपना लिया तथा उधर सुशिक्षित लड़कियों ने विवाह करने के बजाय कॅरियर बनाने को अधिक महत्व देना प्रारम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि सिंगापुर में जन-संख्या की समस्या ने भयानक रूप धारण कर लिया। अतः इस समस्या के समाधान के लिए वहाँ की सरकार जिसने पहले एक से अधिक पत्नियाँ रखने को क़ानूनी अपराध घोषित कर रखा था, अब वह लोगों को सुझाव दे रही है कि लोग अधिक पत्नियाँ रखकर आबादी बढ़ाने की चिन्ता करें। सिंगापुर के प्रधानमंत्री के इस परामर्श के पश्चात् वहाँ के एक वरिष्ठ मंत्री ने यहाँ तक कह दिया कि यदि कोई व्यक्ति एक से अधिक पत्नियाँ नहीं रखना चाहता तो उसको चाहिए कि वह एक पत्नी के साथ अनेक दासियाँ रखकर उनसे बच्चे पैदा करे।

प्रधानमंत्री ने कहा—

"'एक पत्नित्त्व' कोई अच्छी बात नहीं है तथा इस पाश्चात्य रीति के पीछे पड़े रहना सर्वथा मूर्खता है।"

एक वरिष्ठ मंत्री एस॰ राजारत्नम् ने एक बार कहा—

"यदि कोई व्यक्ति एक से अधिक पत्नियाँ रखने का इच्छुक है तो आप उसको रोक नहीं सकते...... आप एक पत्नी के साथ कई दासियाँ भी रख सकते हैं।"

(सहरोज़ा दावत, 4 फ़रवरी, 1987 ई॰)

पश्चिम के अंधानुकरण ने सिंगापुर को इस दशा तक पहुँचा कर इतना विवश कर दिया है कि अब वह औरत को केवल बच्चा पैदा करनेवाली मशीन के रूप में प्रयोग करने के लिए भी तैयार हो गया है।

रूस

प्रथम विश्व-युद्ध के समय रूस के ज़ार का पतन हुआ तथा वहाँ साम्यवादी हुकूमत स्थापित की गई। उसका प्रथम नायक लेनिन हुआ। कार्ल मार्क्स ने साम्यवाद की परिकल्पना दी थी और लेनिन के करकमलों से साम्यवादी शासन की स्थापना हुई। यौन-सम्बन्धी लेनिन के विचार पिछले पृष्ठों में गुज़र चुके हैं। रूस की साम्यवादी सरकार ने अपनी क्रान्ति के साथ ही जन-संख्या वृद्धि रोकने की क्रिया आरम्भ कर दी थी तथा उसने लाखों लोगों को मौत के घाट उतार दिया। मौत हर उस व्यक्ति की क़िस्मत बन गई थी, जो अपने आर्थिक संसाधनों को सरकार के हवाले कर देने में तनिक भी आनाकानी करता।

उसने पूरे देश को सरकार का सेवक बनाकर रख दिया था और रूसी कम्यूनिस्ट पार्टी की तानाशाही लागू कर दी थी। सरकारी नीतियों के विरुद्ध विचार प्रकट करने का कोई व्यक्ति साहस नहीं कर सकता था। उसने पत्नियों को उनके पतियों से अति दूरस्थ जगहों पर सेवारत किया तथा पतियों को उनकी पत्नियों से अति दूर। इस प्रकार उसने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया कि औरत अपनी यौन आवश्यकता से विवश होकर अपने आपको किसी भी पुरुष के हवाले कर देने के लिए सहमत हो जाए। इसी प्रकार पुरुष को भी इसके लिए मजबूर कर दिया कि समय पर जो औरत उपलब्ध हो जाए उससे अपनी काम-वासना की पूर्ति कर ले। साम्यवादी पार्टी की एक सभा में तो प्रत्येक नवयुवती का यह परम कर्तव्य बना दिया गया था कि जब भी कोई कामरेड उसको बुलाए उसका कर्तव्य है कि वह अपने आपको उसके हवाले कर दे। स्पष्ट है स्वच्छन्द कामवासना की पूर्ति करनेवाले उन जोड़ों को सन्तान से क्या दिलचस्पी हो सकती थी। वहाँ बच्चे पैदा करनेवाली औरतों को अति कठिन कार्य करने पर लगा दिया जाता ताकि उन्हें बच्चे की ओर ध्यान देने का अवसर ही न मिले तथा काम करते-करते इतनी बेदम हो जाएँ कि स्वयं बच्चा ही उनके लिए बोझ बनने लगे। सरकार की इस नीति के फलस्वरूप उसे राष्ट्रीय पूँजी का एक बड़ा भाग प्रतिरक्षात्मक तैयारी, सम्पूर्ण संसार में कम्यूनिस्ट व्यवस्था

की स्थापना तथा विज्ञान एवं तकनीकी के मैदान में प्रगति करके संसार की सबसे बड़ी शक्ति बनने के लिए लोग मिल तो गए परन्तु देश में बच्चों की पैदाइश ख़तरनाक हद तक कम हो गई। इस हद तक कम कि उसकी अपनी सुरक्षा के लिए भी अपर्याप्त होने लगी। कुछ वर्षों पहले एक ख़बर आई थी कि रूस में नवयुवकों की संख्या इतनी कम हो गई है कि सन् 2000 ई॰ में जब रूसी सेनाओं के लिए भर्ती होगी तो उसे प्राचीन रूसी राष्ट्रों से आवश्यकता के अनुसार नौजवान नहीं मिल सकेंगे। अतः उसे दूसरे प्रजातांत्रिक देशों से एक तिहाई फ़ौजी भर्ती करने पड़ेंगे। इस स्थिति तक पहुँचने के पश्चात रूसी सरकार को अपनी अदूरदर्शिता का आभास हुआ। और फिर अधिक से अधिक बच्चे पैदा करने के अनुरोध किए जाने लगे। अतः बच्चेवाली औरतों को नई-नई सुविधाएँ प्रदान करने की घोषणा की जाने लगी। अतः सूचना है—

> "रूसी सरकार और ट्रेड यूनियनों की केन्द्रीय समिति ने औरतों के लिए बच्चे की डेढ़ वर्ष की उम्र तक देखभाल करने के लिए आंशिक रूप से मुआवज़े के साथ अवकाश में बढ़ोत्तरी करने का आदेश जारी किया...... इसके अतिरिक्त औरतें बच्चों की देख-भाल के लिए और अधिक मुआवज़े सहित छुट्टी उस समय तक के लिए ले सकती हैं जब तक कि उनका बच्चा तीन साल का नहीं हो जाता।"
>
> (सहरोज़ा दावत, 7 सितम्बर 1989)

लेकिन रूसी सरकार को यह सब उस समय समझ में आया जब पानी सिर से ऊपर हो चुका था। एक बार यदि नैतिक मूल्यों के ताने-बाने काट दिए जाएँ तो फिर उन्हें दोबारा स्थापित करना असम्भव हो जाता है। अतएव उन सुविधाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इधर कठिनाई यह भी थी कि यदि सेना एवं राज-काज के दूसरे कार्यों में ग़ैर रूसियों को ले लिया गया तो अवश्य ही वे उन अत्याचारों का बदला लेंगे, जो उनपर पिछले सत्तर वर्षों में किए गए और रूसी क़ौम का जीवन दूभर हो जाएगा जो वैसे भी मरणासन्न पर है। इसलिए मीकाइल गोरबा चोफ़ ने ही पहले तो सरकार के प्रत्येक विभाग पर से पार्टी का प्रभुत्व समाप्त किया तथा फिर संयुक्त सोवियत संघ में कम्युनिस्ट पार्टी को समाप्त करके उसके प्रजातांत्रिक घटकों को स्वतन्त्र देश के रूप में जीवन का आरम्भ करने की अनुमति प्रदान कर दी। अतः सोवियत संघ एक धमाके के साथ टुकड़े-टुकड़े हो गया।

पश्चिम का पूरब से भयभीत होना

यह है वह परिणाम जिससे बर्थ-कंट्रोल आन्दोलन ने सोवियत संघ को परिचित कराया है। सोवियत संघ ही क्या यूरोप के सारे ही देश उसी गन्तव्य की ओर तीव्र गति से बढ़ते चले जा रहे हैं।

इन परिस्थितियों में पश्चिमी देशों को एशिया से बड़ा ख़तरा महसूस हो रहा है। इसलिए वे इन देशों में बढ़ती हुई जनसंख्या से भयभीत हैं। पश्चिमी देशों में चूँकि काम करने वाले हाथों की बड़ी कमी पैदा हो गई है, इसलिए आबादी अधिक होने के कारण एशियाई देशों से लोग वहाँ जाकर सरलता से नौकरियाँ प्राप्त कर लेते हैं। अब उन पश्चिमी देशों में एशियाई लोगों की इतनी अधिकता हो गई है कि यदि कभी इन लोगों को राजनीतिक अधिकार देने पड़ गए तो पाश्चात्य जातियाँ एशियाई जातियों की दास बनकर रह जाएँगी और उनकी सांस्कृतिक विशिष्टता मौत के घाट उतर जाएगी। अतः ये देश आई॰ एम॰ एफ़॰ (इन्टरनेशनल मॉनिटरी फ़ंड), अन्तर्राष्ट्रीय बैंक एवं संयुक्त राष्ट्र संघ का सहयोग लेकर एशियाई देशों में बर्थ-कंट्रोल आन्दोलन को बढ़ावा देने, बल्कि बलपूर्वक लागू करने के प्रयत्न में व्यस्त हैं ताकि जिन नैतिक एवं शारीरिक बीमारियों में पश्चिम ग्रस्त हो चुका है, वे इन देशों में भी फैल जाएँ और उसके लिए किसी सीमा तक ख़तरा कम हो सके। अतः ये देश संयुक्त राष्ट्र संघ के संरक्षण में औरतों की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की कान्फ्रेन्सें अब एशिया में प्रतिवर्ष आयोजित करने लगे हैं। सन् 1994 ई॰ में यह कान्फ्रेन्स मिस्र में हुई थी तथा इसके बाद सन् 1995 ई॰ में चीन में हुई थी।

इन सब बातों के अतिरिक्त यदि एशियाई राष्ट्र पश्चिम का अन्धानुकरण करने की अब भी हठ करते हैं तो इसे सिर्फ़ सामूहिक आत्म-हत्या का नाम ही दिया जा सकता है।

मग़रिब की ग़ुलामी पे रज़ामन्द हुआ तू।
मुझको तो गिला तुझसे है, मग़रिब से नहीं है।।

(5)

बर्थ-कंट्रोल और भारतवर्ष

पिछले अध्यायों में बर्थ-कंट्रोल के आधारभूत दृष्टिकोण, इस आन्दोलन की सफलता के कारण, इसके प्रभावों व परिणामों तथा इसके अति भयानक फल की समीक्षा प्रस्तुत की गई है, जो उन देशों में प्रकट हुआ और जिन्होंने इस आन्दोलन पर समुचित चिन्तन किए बिना इसको अपना लिया। इस समीक्षा से यह भी ज्ञात हुआ कि जिन देशों ने इस आन्दोलन को अपनाया है, उनमें नैतिक पथ-भ्रष्टता, यौन अराजकता, निरंकुश वासनात्मक विलासिता तथा समलैंगिकता की महामारी ने किस प्रकार पूरे समाज को अपनी लपेट में ले लिया है। इस यौन अराजकता ने पारिवारिक व्यवस्था एवं विवाह की रीति को विनाश के घाट उतारकर समाज को कितनी अपूर्णीय क्षति पहुँचाई है। उन देशों के समाज का यह परिणाम इस आन्दोलन का बिल्कुल स्वाभाविक फल है तथा संसार का जो देश भी इस मार्ग को अपनाएगा उसे भी इस स्वाभाविक परिणाम से ग्रसित होना पड़ेगा। इसकी एक बहुत बड़ी हानि यह भी होती है कि स्वच्छन्द काम-तृप्ति, एवं यौन-अराजकता में ग्रसित समाजों में ऐसे जोड़ों से जो सन्तान उत्पन्न होती है उनपर माता-पिता की प्रवृत्तियों एवं मानसिकताओं का इतना गहरा प्रभव पड़ता है कि ये बच्चे बड़े होकर उत्साह व साहस, बहादुरी एवं संघर्षपूर्ण जीवन तथा जीवन के महान उद्देश्य से वंचित रह जाते हैं। यहाँ तक कि ये नस्लें माँ-बाप के मानसिक प्रभाव तथा माहौल की ख़राबी से पैदा होनेवाली बौद्धिक पतन के फलस्वरूप बौद्धिकता की उच्च योग्यताओं से भी वंचित हो जाती हैं। हाल के वर्षों में अनेक सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ कि अब दक्षिण एशिया (जहाँ बर्थ-कंट्रोल ने समाज में यौन अराजकता का माहौल पैदा नहीं किया है) के बच्चे यूरोपीय बच्चों से अधिक मेधावी होते हैं। सर्वेक्षण रिपोर्टों के इन परिणामों ने यूरोपीय जातियों को अत्यधिक चिन्तित कर दिया है। इसलिए कि ये रिपोर्टें इस बात की द्योतक हैं कि अब बौद्धिक एवं वैचारिक और विज्ञान एवं तकनीकी के मैदानों का नेतृत्व करने से

भी वंचित रहने का भय पाश्चात्य देशों को हो चुका है। अब वे भविष्य में इन मैदानों के नेतृत्व से भी बेदख़ल होनेवाले हैं।

इन परिस्थितियों ने यूरोपीय सरकारों को चिन्तित कर रखा है कि वे अपनी जाति को उस सम्मान से वंचित होने से किस प्रकार सुरक्षित रखें। उनमें इतना साहस तो है नहीं कि बलपूर्वक अपनी जाति को परिस्थितियों से निकालने के लिए विधि-निर्माण की शक्ति का प्रयोग कर सकें। इसलिए कि उसके फलस्वरूप जो प्रतिक्रिया सामने आएगी, वह इन शासकों की सत्ता को समाप्त कर सकती है। इसलिए वे इसका साहस तो अपने अन्दर नहीं पाते, अलबत्ता उन्होंने उन्हीं सारी बीमारियों में दक्षिणी एशियाई देशों को ग्रसित करने के लिए बर्थ-कंट्रोल आन्दोलन को तीव्र गति से चलाने की योजनाएँ बना डाली हैं। उन देशों में, जो इन योजनाओं का निशाना बनाए गए हैं, भारतवर्ष भी सम्मिलित है।

भारतवर्ष की विशेषता

भारतवर्ष यूँ तो संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। इस दृष्टि से उसे आधारभूत महत्व प्राप्त है। इस देश के प्राचीन इतिहास से लेकर आज तक की दशा एवं स्वभाव का अध्ययन बताता है कि इस देश की अन्तरात्मा ही में धार्मिकता के तत्व सम्मिलित रहे हैं। इस देश में सदा ही से संसार को माया-जाल माना गया है। उच्च नैतिक मूल्य, आत्मिक पवित्रता एवं आत्मसंयमता इसकी सांस्कृतिक विशेषता रही है। इन विशिष्ट गुणों की पकड़ भारतीय-समाज, यहाँ की संस्कृति तथा लोगों की चेतनाओं पर इतनी प्रबल है कि दो सौ वर्षीय अंग्रेज़ी शासन काल में उनके नास्तिक दर्शनों की शिक्षा भी इन विशेषताओं से भारत वर्ष को वंचित नहीं कर सकी। हमारी यही वे आधारभूत विशेषताएँ हैं जो आज भी इस देश की रक्षक बनी हुई हैं। अन्यथा यह देश भी उन नैतिक बीमारियों में ग्रसित हो चुका होता जिनमें यूरोपीय देश ग्रसित हैं।

भारतवर्ष की मौलिक कल्पना

भारतीय संस्कृति की रग-रग में आत्मा की भाँति धार्मिकता प्रवाहित है। इस देश में दो सबसे बड़े धर्म, हिन्दु धर्म और इस्लाम धर्म, आबाद

हैं। दोनों ही इस संसार तथा मानव को ईश्वर के सृष्टि होने पर विश्वास रखते हैं। दोनों इस बात पर भी विश्वास रखते हैं कि सन्तान ईश्वर की अमानत और उसकी देन है। दोनों इस बात पर सहमत हैं कि प्रत्येक बच्चा अपनी आजीविका लेकर स्वयं पैदा होता है तथा दोनों आनेवाले बच्चों को रोकना घोर पाप समझते हैं। ये इतनी दृढ़ आस्थाएँ हैं जिनके कारण बर्थ-कंट्रोल का अभियान यहाँ सर्वमान्य एवं लोकप्रिय नहीं हो रहा है। इसलिए कि इस देश में जन-साधारण के धर्म एवं नैतिकता को छेड़े बिना इस अभियान को जारी रखने का प्रयत्न किया जा रहा है। अतः इस देश में इस अभियान की लोकप्रियता की गति उस गति से बहुत धीमी है, जो गति उसे पाश्चात्य देशों में प्राप्त हो चुकी है।

माल्थस का सिद्धान्त तथा भारतवर्ष

जैसा कि पिछले पृष्ठों में विश्लेषण किया जा चुका है कि बर्थ कंट्रोल आन्दोलन की बुनियाद ईसाई पादरी माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त है। यह बात भी ज्ञात हो चुकी है कि इस सिद्धान्त की बुनियाद मात्र कल्पनाओं पर रखी गई है जिसकी नीव में कोई दृढ़ चट्टान नहीं है अपितु केवल सूखा रेत ही रेत है। असम्भव कल्पनाओं के रूप में यदि इसे किसी दशा में सही मान भी लिया जाए तब भी भारत जैसे कृषि-प्रधान देश पर इसे किसी दशा में भी लागू नहीं किया जा सकता। खाद्यान्न उत्पत्ति तथा जनसंख्या के अनुपात का इस देश में जब विश्लेषण किया जाता है तो वास्तविकताएं इसी प्रकार इस सिद्धान्त का उपहास करते दिखाई पड़ती हैं। दृष्टि डालें :

क्रम संख्या	वर्ष	जनसंख्या	खाद्यान्न उपज
1	1950-51	361000000	50800000 टन
2	1960-61	442400000	82000000 टन
3	1970-71	551300000	108400000 टन
4	1980-81	690100000	129600000 टन
5	1990-91	843900000	177200000 टन
वृद्धि (1-5)	चालीस वर्ष	482900000 (2.335 गुणा)	126400000 टन (3.5 गुणा)

नोट : ये आँकड़े मिनिस्ट्री आफ़ इन्फ़ारमेशन एवं ब्राडकास्टिंग की ओर से प्रकाशित पैम्फ़लेट इन्डिया फैक्ट्स (India Facts) से लिए गए हैं।

देश की खाद्यान्न स्थिति

भारत सरकार द्वारा दी गई इन सूचनाओं से ज्ञात हुआ कि पिछले चार दशकों में जनसंख्या में 2.335 गुणा वृद्धि हुई है। जबकि खाद्यान्न में 3.5 गुणा अधिक उपज हुई है। खाद्य पदार्थों की यह गणना भी अपूर्ण है क्योंकि इसमें करोड़ों टन प्रयोग में लाई जानेवाली सब्ज़ियों, दालों तथा फलों को सम्मिलित नहीं किया गया है। इसी प्रकार इस देश के तालाबों, नदियों एवं समुद्रों से प्राप्त होनवाली करोड़ों टन मछलियाँ भी सम्मिलित नहीं की गई हैं तथा न ही इन गणनाओं में भोजन के काम में लाए जानेवाले जंगली व पालतू जानवरों का माँस लिया गया है। यदि इन सब भोज्य पदार्थों को भी सम्मिलित कर दिया जाए तो खाद्यान्न पैदावार की गणना में और भी अधिक वृद्धि हो सकती है। एक बार दिवंगत प्रधान मन्त्री राजीव गाँधी ने अपने एक भाषण में कहा था कि यदि देश में दस वर्ष तक खाद्यान्न का एक दाना भी पैदा न हो तब भी किसी एक आदमी को भूख की तकलीफ़ नहीं होने दी जाएगी। बी॰ बी॰ सी॰ लन्दन ने, अपने 4 जुलाई 1995 के प्रसारण में सूचना दी थी कि भारतवर्ष में इतनी अधिक खाद्यान्न उपज हो रही है कि देश के केवल एक राज्य (पंजाब) में पचास लाख टन गेहूँ तथा बीस लाख टन चावल खुले आसमान के नीचे पड़े होते हैं क्योंकि इनको रखने के लिए कोई स्थान नहीं है। बी॰ बी॰ सी॰ के सँवाददाता ने जब फ़ूड कॉर्पोरेशन आफ़ इन्डिया (भारतीय खाद्य निगम) के प्रबन्धकों से बात की तो उन्होंने बताया कि देश में निगम के जितने गोदाम हैं वे सब के सब ग़ल्ले से ठसे पड़े हैं। उनमें और अधिक अनाज रखने का स्थान नहीं है। अतः हम इस अनाज को रखने में असमर्थ हैं। बी॰ बी॰ सी॰ ने यह भी बताया कि इस अतिरिक्त अनाज को रखने के लिए तो देश में जगह नहीं है तथा केवल दो माह पश्चात् फिर से चावलों की नई फ़सल आ रही है तो फिर बीस लाख टन चावलों को सुरक्षित रखने की विकट समस्या पैदा हो जाएगी।

देश की जनसंख्या का मानक स्तर

देश में खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्म-निर्भरता की यह स्थिति है जिसमें और अधिक वृद्धि की सारी सम्भावनाएँ अभी मौजूद हैं। जबकि केवल कृषि खाद्यान्न उपज के वर्तमान मानक को सामने रखकर विशेषज्ञों का मत है कि इस देश में एक अरब बीस करोड़ लोगों को पर्याप्त खाद्यान्न उपलब्ध कराने की क्षमता इस समय मौजूद है। इस समय (1995 ई॰ में) भारतवर्ष की कुल जनसंख्या चौरासी करोड़ के लगभग है। मौजूदा साधनों ही में भारत चालीस करोड़ और अधिक लोगों को खाद्यान्न उपलब्ध करा सकता है। अभी उन साधनों में विकास की अत्यधिक सम्भावनाएँ मौजूद हैं।

क्या बर्थ-कंट्रोल हमारे लिए लाभदायक है?

देश की जनसंख्या एवं खाद्यान्न स्थिति के इस विश्लेषण के पश्चात् अब यह निर्णय लेना जनता तथा लोकतान्त्रिक सरकार का कार्य है कि उसे अपनी परिस्थितियों को सामने रखकर बर्थ-कंट्रोल के मामले में निर्णय करना है या मात्र मामूली सहायता के लोभ में पश्चिम के उस षडयन्त्र के हवाले अपने आपको कर देना है, जिसके फलस्वरूप उच्च नैतिक एवं मानवीय सदगुणों से वंचित होकर कामुक पशुओं के स्तर तक गिरना स्वाभाविक है और सैकड़ों वर्ष के पश्चात् वैचारिक एवं विज्ञान के क्षेत्र में मानव जाति के मार्गदर्शन व नेतृत्व का जो सुअवसर हाथ आने की सम्भावना उत्पन्न हो रही है उससे वंचित न रहना विवेकशीलता एवं दूरदर्शिता का तक़ाज़ा है। विचार कीजिए तथा किसी सकारात्मक परिणाम तक पहुँचकर व्यावहारिक रूप से क्रियाशील होने का निर्णय कीजिए।

☆ ☆ ☆